शास्त्रार्थ फीरोजाबाद

जोकि

आर्यसमाज फीरोजाबाद और जैनधर्म वाल

श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर और अ

की

आज्ञानुसार हुआ

और

मुन्शी शिवदयाल सिंह जी के प्रयत्नसे

वैदिकयन्त्रालय

प्रयाग

में

मुद्रितहुआ

संवत् १९४५ सन् १८८८ ई०

मूल्य प्रति

छपी

१०००



ओ३म्

भूमिका

—:-*-:—

उस परब्रह्म परमात्मा को अनेकशः धन्यवाद देना चाहिये जिस की प्रेरणा और परमकृपा से सब मनुष्य अपने २ कर्त्तव्य धर्मों में प्रवृत्त होते हैं उस परमात्मा ने अपनी परमदयालुता से सब प्राणियों के हितार्थ उस सर्वोत्तम विद्या का उपदेश किया कि जिस से संसार और परमार्थ का सुख सिद्ध हो। और परमेश्वर वही हो सकता है जिस के ऊपर कोई न हो और उस की आज्ञा भी सब के लिये एक सी होनी चाहिये यदि किसी समुदाय को अन्य उपदेश दे तथा किसी को भिन्न आज्ञा देवे तो समझिये कि उन दो समुदायों में विरोध कराने वाला ईश्वर ही हो जावे फिर ऐसे को ईश्वर मानना सिद्ध न हो सके गा इस लिये ईश्वर वही है जो सब के लिये एक हो और उस का उपदेश वा आज्ञा भी सब के लिये एकसी होवे। प्रयोजन यह है कि संसार में परस्पर विरुद्ध अनेक मत जो प्रवृत्त हैं उन सब का मूल ईश्वर नहीं है किन्तु मनुष्य लोगों की ओर से हैं। इन मतों में जो २ बातें सब की एक सी मिलती हैं वे सब ईश्वरीय विद्या वेद से वहां २ गई हैं। जैसे ईश्वर को प्रायः मानते हैं और बहुधा ईश्वर के गुण कर्मस्वभावों को भी एक प्रकार से मानते हैं वे सब ठीक हैं और जो २ ईश्वर विषय में भी परस्पर विरुद्ध गुणादि मानते हैं वे सब बीच के बनावटी हैं। जो लोग नास्तिक समझे जाते हैं वे भी किसी सिद्ध पुरुष को सर्वज्ञादिगुणविशिष्ट अपना इष्टदेव मानते हैं पर उस को अनादि सनातन सिद्ध सर्वशक्तिमान् सृष्टि-

कर्त्ता नहीं मान ते। इस मन्तव्य में यह विरोध आता है कि जो अनादि न होगा और बीच में सिद्ध हो जाय गा तो वह अपने उत्पन्न होने से पहिले का हाल नहीं जान सकता क्योंकि पिता के जन्म का दर्शन पुत्र को होना कदापि सम्भव नहीं। जब ऐसा है तो उसको सर्वज्ञ मानना कदापि ठीक नहीं है। इस अनेक प्रकार के मत मतान्तर का फैलना मनुष्यों को अविद्या से होता है पर इस सृष्टि में जो २ सर्वज्ञहितकारी विद्वान् होते हैं वे प्रायः यही प्रयत्न करते हैं कि ईश्वरीय व्यवस्थानुसार सब का मन्तव्य ठीक २ हो जावे परस्पर का वैरविरोध मिट कर शुद्ध वैदिकधर्म की सर्वत्र प्रवृत्ति होवे। इसी के अनुसार श्रीमत् स्वामिदयानन्दसरस्वती जी महाराज ने भी प्रयत्न किया कि सब मतोंका वैर विरोध मिटा के एक वैदिक मत को सब मानें पर मतवादी लोग ऐसे पक्षपात में ग्रस्त हो रहे हैं कि आर्य लोग आंख से देखते हैं तो हम नाक से देखने लगें जब से श्रीमदुक्तस्वामी जी ने वैदिक आर्यधर्म की उत्तमता का उपदेश किया है तब से अनेक मतवादियों ने (अपनी बनावटी लीला को कटते देखकर) जहां तहां शास्त्रार्थ कर ने का प्रारम्भ किया परन्तु वे लोग शास्त्रार्थ करने में यदि विचारपूर्वक पक्षपात छोड़ के केवल सत्यासत्य के निर्णय के लिये प्रवृत्त हों तबतो अवश्य अच्छा फल होवे परन्तु उन लोगों की दृष्टि यह रहती है कि हमारे पक्ष की मूर्खमण्डली (जिस से हमारा सब धनादि का काम निकलता है) गड़बड़ा कर हमारे फन्द से न निकल जावे इस लिये शास्त्रार्थ का हल्ला करके अपना विजय सब को प्रगट कर देवें गे। आजकल अनेक स्थलों में शास्त्रार्थ होते हैं पर उन से ऐसा कोई पूर्णलाभ नहीं होता कि जो अनेक सत्पुरुषोंको सत्यासत्य मालूम हो जावे तथापि बुद्धिमान् लोग उस विवाद में यथोचित बलाबल समझही लेते हैं इससे वैदिकधर्म की उन्नति शनैः२ होती ही जाती है ॥

जिला आगरा में एक फीरोजाबाद नामक कस्बा है वहां जैनियों का तीर्थ है प्रति वर्षचैत्र में मेला होता है यह प्रसिद्ध है कि जिन नगरों में जैनी आदि की पोपलीला के मुख्यस्थान हैं वहां आर्य्यसमाज की उन्नति वा स्थिति होना कठिन होता है इसी के अनुसार नगर फीरोजाबाद में भी आर्य्यसमाज का आरम्भ होना जैनियों को महाअनिष्टकारी हुआ उन्हों ने समाज तोड़ने के कई एक उपाय किये दो एक वार समाजमें अपना आदमी भेजा कि हम मतविषयमें शास्त्रार्थ करना चाहते हैं समाज से पत्रद्वारा उत्तर दिया गया कि हम भी शास्त्रार्थ करने को कटिबद्ध हैं इस प्रकार की बातें आर्य्यसमाज फीरोजाबाद और उस नगर के जैनियों में हो ही रही थी कि इतने में सनातन आर्य्यधर्मोपदेशक श्रीस्वामिभास्करानन्दसरस्वती जी संवत् १९४४ फाल्गुन मास में इस फ़ीरोज़ाबाद नगर में पधारे और सनातन धर्म की वृद्धि पर व्याख्यान दिया। इस पर इसी उक्त नगर के रईस जैन धर्मावलम्बी सेठ फूलचन्द जी ने कहा कि मत विषय पर वार्त्ता होनी चाहिये जिस का मत ठीक और सनातन निकले द्वितीय पक्ष वाला उसी का ग्रहण करे (स्वा० भा०) जी के साथ फूलचन्दने और उक्त स्वामी जी ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि जिस का पक्ष गिर जावे वह द्वितीय पक्ष को स्वीकार करे। तब स्वा० भा० जी ने कहा कि तुम्हारी ओर से जो कोई शास्त्रार्थ करने वाला हो उस को बुला ओ इस पर सेठ फूलचन्द जी ने पं० पन्नालाल जैनधर्मी को बुलाया वे किसी विशेष कारण से न आये तब यह बात निश्चित हुई कि प्रथम चैत्रसुदि ३ से ८ तक मतविषय पर आर्य और जैनियों का शास्त्रार्थ हो। इस बात का लेखभी समाचार पत्रों में छप गया था और यह बात सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रकट हो गई दोनों पक्ष वालों ने अपने २ पक्ष के पण्डितों को बुलाना प्रारम्भ किया। आर्य्यों की ओर से शास्त्रार्थ करने वाले पं० चैत्रसुदि द्वितीया तक आगए परन्तु जैनपक्ष के पण्डित

द्वितीया को नहीं आये। आर्य्यों की ओर से द्वितीया के दिन जब पण्डित लोग आ गये तब सर्व सम्मति के अनुसार पं० गंगाधर जी उपदेशक आर्य्य-समाज जसवन्त नगर ने सेठ फूलचन्द जी से जाकर कहा कि शास्त्रार्थ कल तृतीया से प्रारम्भ होना चाहिये जैसा कि सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है इस लिये (पहिले से) आज ही शास्त्रार्थ के नियम और विषय नियत हो जाने चाहिये जिस से शास्त्रार्थ होते समय कालात्यय न हो इस पर उक्त सेठ जी ने उत्तर दिया कि हमारे पं० लोग तृतीया को आजावें गे उसी समय सब नियमादि हो जावें गे। जब जैन पं० द्वितीया को रात को आगये तो उसी समय में समाज के मन्त्री और उक्त पं० गंगा-धर जी ने फिर जाकर सेठ जी से कहा कि शास्त्रार्थ के नियम बँधजाने चाहिये तथा प्रबन्धकर्त्ता और सभापति भी नियत हो जाने चाहिये जिस से शास्त्रार्थ के समय में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो तब उन्हों ने यह कहाकि ये सब बातें सभा में इकट्ठे होकर कर लेवेंगे। इस पर बहुत कहने सुननेसे दोनों पक्ष की ओर से दो २ प्रबन्धकर्त्ता नियत किये गये आर्य्यों की ओर से सभापति आर्य्यसमाज फ़िरोज़ाबाद श्रीमान् चतु-र्वेदी कमलापति जी और पण्डित गंगाधर जी और जैनियों की ओर से लाला मञ्जूलाल साहब तथा लाला प्यारेलाल साहब नियत हुए फिर एक पंचम पुरुष सरपंच सभापति के लिये कहा गया वहपुरुष सरकारी ओहदेदार वकील आदि हो वा शहर का कोई प्रतिष्ठित रईस हो वा कोई ज़मीदार हो चाहे किसी मज़हब का क्यों न हो उस को दोनों पक्ष वाले निष्पक्षपाती धर्मात्मा समझ के स्वीकार करें। वह सभापति शास्त्रार्थ के नियम और विषयों पर दोनों पक्ष के शास्त्रार्थ कर्ताओं के हस्ताक्षर करा के अपने पास रक्खे जो कोई नियम वा विषय से चलायमान हो उस को यथोचित रोके। इस पर सेठ फूलचन्द जीने कहा कि सभापति और नियमादि सब प्रातःकाल नियत कर लिये जावेंगे और शास्त्रार्थ का समय

भी उसी समय नियत कर दिया जायगा। मंत्री और पं० गंगाधर जी सब को धन्यवाद देकर अपने स्थान को चले आये और आये हुए आर्य पं० जनों से निवेदन किया कि उन्हों ने प्रातः काल शास्त्रार्थ के नियम पंच और विषय स्थिर करने के लिये कहा है सबकी सम्मति हुई कि प्रातः: काल ही सही। तब प्रातः काल सेठ जी साहब ने रात्रि की बातों पर कुछ ध्यान और प्रबन्ध न किया। अर्थात् ऐसा भुला दिया कि जानो स्वप्न हुआ था प्रातःकाल और का और ही ठाठ रचमारा कि एक पत्र संस्कृत का (जिसमें किसी के हस्ताक्षर भी नहींथे) लिख भेजा। इस पर मंत्री ने एक पत्र उर्दू जबान में लिखा कि आप कृपाकर यह लिख भेजिये कि यह पत्र आप का ही है ?। इसपर सेठ जी साहब के अनुयायी पण्डित आदि बहुत लाल ताते हुए और कहा कि हम को म्लेच्छभाषा क्यों लिख भेजी। इसपर मंत्री और पं० गंगाधर जी त्रिपाठी पुनः सेठजी के पास गये और कहा कि आपने पञ्चम प्रबन्धकर्त्ता पुरुष और नियमों का कुछ प्रबन्ध अभीतक न किया तब उन्हों ने उस पत्र पर पं० छेदालाल के हस्ताक्षर करा दिये और उत्तर दिया कि नियम और पंचमपुरुष का सब निश्चय पत्रों से हो जायगा आप पत्र का उत्तर दीजिये मन्त्रीने फिर भी निवेदन किया कि ऐसी बातों के निश्चयार्थ पत्रों की लिखा पढी करने की आवश्यकता नहीं किन्तु दोनों पक्ष के भद्रपुरुष मिलकर मकान नियम और जिनविषयों पर शास्त्रार्थ हों निश्चय करलेवें उन्हों ने मेरे कथन को सुना न सुना कर यही जवाब दिया कि आप पत्र का उत्तर दीजिये मंत्री ने कहा बहुत अच्छा परन्तु यह काम इस रीति से कदापि अच्छा न होगा मंत्री ने अपनी पण्डितमण्डली को वह उक्त संस्कृत का पत्र हस्ताक्षर कराया हुआ उत्तर देने को दिया इस पत्र के उत्तर की शीघ्रता करने में उन का अभिप्राय यह था कि हमने जो अपनी ओर से दाम देकर पण्डितों को भाड़े का टट्टू

बनाया है आर्य्य लोग इस संस्कृत के पत्र का उत्तर नहीं दे सकते हैं इसलिये मिलकर प्रबन्ध करना चाहते हैं और जैनियों का मुख्य भीतरी आशय यह था कि इस प्रकार पत्र भेजने करने में ही कुछ समय व्यतीत हो जबतक कोई और कारण खड़ा हो जायगा तो शास्त्रार्थ होना वचा रहै और आर्य्यों का अभिप्राय था कि साधारण बातों के लिये पत्र व्यवहार से कालक्षेपन हो और मुख्य शास्त्रार्थ का आरम्भ शीघ्र होवे।

वह जैनियों का प्रथम संस्कृत पत्र यह है

यथा (श्रीः)

श्रीमदार्य्यसमाजसभ्यैः फिरोजावादनगरस्थजैनधर्मिकृतनत्युत्तरमदोऽवगन्तव्यम् ।

शराब्ध्यङ्के द्वब्दीय प्रथमचैत्रशुक्लपक्षगुर्वन्वितत्रितीयायां शास्त्रार्थो भविष्यतीति तत्र २ भवद्भिरघोषितम्मुद्रितं च अतस्स पाङ्क्तघण्टाध्वननतः पाथोऽधिघण्टाध्वननावध्यदैव कर्त्तव्यः परन्तु शास्त्रार्थपदशक्यस्य शास्त्रीयवाक्यतात्पर्य्यावबोधनिर्णायकतया शास्त्राणां संस्कृतरूपत्वेन च परस्परसंस्कृतालापपूर्वक एव शास्त्रार्थः कर्त्तव्य इत्यस्मदीयेप्सा—शास्त्रार्थानन्तरं शास्त्रार्थविषयः संस्कृतभाषायां च जगद्वैदित्यन्वेयः। शास्त्रार्थापेक्षितजयाजयनिर्णेतृमध्यस्थविवेचनं समक्षतः परस्पराभिलाषातो वानुष्ठेयः—एतावतैवालमल्पाङ्कनतोऽप्यभिप्रायावगन्तृज्ञेषु ।

संवत् १९४५ प्रथम चैत्रशुक्ल ३ गुरुवारे

भवत्स्नेहिनः फीरोजावादस्था जैनधर्मावलम्बिनः नियतसमयात्पूर्वपत्रोत्तराभिलाषिणश्च—हः छेदालालजैन

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यसमाज के सभ्यों को फीरोजावाद नगरस्थजैनधर्मवालों ने किये नमस्कार के पश्चात् यह जानना चाहिये कि संवत् १९४५ के प्रथमचैत्र शुक्लपक्ष तृतीया बृहस्पतिवार को शास्त्रार्थ होगा इस प्रकार उन २ शहर आदि में आप लोगों ने कहा और छपाया

है इस से वह शास्त्रार्थ १० बजेसे ४ बजेतक आजही करलेना चाहिये परन्तु शास्त्रार्थपद का जो अभिप्राय है वह शास्त्रसम्बन्धी वाक्यों से निकले तात्पर्य्य के बोध का निश्चय कराने वाला होने और शास्त्रों के संस्कृत रूप होने से आपस में संस्कृत भाषण पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहिये यह हमारी इच्छा है शास्त्रार्थ के पश्चात् उस का विषय संस्कृत में और भाषा में अनुवाद करा के जगत् को विदित कराना चाहिये जय पराजय का निश्चय करने वाला एक मध्यस्थ विद्वान् शास्त्रार्थ में अपेक्षित है उस का विवेचन सामने मिलकर वा परस्पर की इच्छा से होना चाहिये। इस थोड़े ही लेख से भी अभिप्राय जान ने वालों में उत्तम ज्ञाताओं में समर्पित है।

समीक्षा—सब महाशयों को ध्यान रखना चाहिये कि पूर्वोक्त जैन धर्मियों का संस्कृत पत्र कैसा है इस में शब्द अर्थ और सम्बन्ध की कहां २ अशुद्धि हैं सो यह पत्र हमारे भ्रातृवर्गस्थ पं० जियालाल तथा पं० मिहिर चन्द्र जी की सहायता से लिखा हुआ है क्योंकि इस का पूर्ण अनुमान इस से हुआ कि जैनों के पं० छेदालालादि ने जो पत्र सभा में सब के समक्ष लिखे (जिन में मिहर चन्द्रादि की सहायता नहीं ले सके) हैं उन में इस से बहुत अधिक अशुद्धियां हैं। अर्थरूप अशुद्धियां तो उन के भाषार्थ से ज्ञात हो जावेंगी (शराब्ध्यङ्क्षे द्वद्वीय) यहां (ङ्क्षेन्द्व) ऐसा चाहिये अस्तुछोटी २ बातों पर ध्यान न दे कर बड़ी अशुद्धि देखिये (मध्यस्थ विवेचनं ० ० ० वा नुष्ठेयः) विवेचनं नपुंसक लिङ्ग का विशेषण अनुष्ठेयः पुल्लिङ्ग के साथ किया है संस्कृतज्ञ लोगों के सामने यह अशुद्धि छोटी नहीं है। इस से यह अनुमान होता है कि यदि धनादि के लोभ वश होकर नास्तिक पक्ष की सहायता न करते तो पं० जियालालादि से ऐसी अशुद्धि होनी सम्भव नहीं ईश्वरविमुखों को सहायता देने से इन पर अन्तर्यामी ईश्वर की अप्रसन्नता हुई जिस से उन की बुद्धि स्वस्थ न रही। आस्तिक जन अपने सब काम ईश्वर की सहायता से करते हैं॥

इस उक्त संस्कृत पत्र के उत्तर में आर्य्यसमाज का संस्कृत पत्र ही द्वारा उत्तर

ओ३म्

श्रीमज्जैनधर्मावलम्बिषु ॥

भवतां पत्रं समागतं रात्रौ यन्निर्णीतं तस्मिन् विषये किमपि न लिखितं, शास्त्रार्थप्रबन्धकर्त्तार: पञ्च सज्जना: पूर्वं नियोजनीया: पश्चात्स्थानं निर्णेतव्यं यत्र शास्त्रार्थ: स्यादिति। ततो यैर्नियमै: शास्त्रार्थ: स्यात्तेऽपि निश्चेतव्या:। यत्र २ विषये शास्त्रार्थेन भवितव्यं सोऽपि लेख्यएव।

हस्ताक्षराणि गंगारामवर्म्मण:
संवत् १९४५ चैत्रशु० ३ फीरोजाबादस्थार्य्यसमाजामात्यस्य

भाषार्थ—श्रीमान् जैनधर्मावलम्बियोग्य—पत्र आपका आया रातको जो निश्चय हुआथा उस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा। पहिले शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता पांच सज्जन पुरुष नियुक्त करने चाहिये इस के पश्चात् जहां शास्त्रार्थ हो उस स्थान का निश्चय करना चाहिये इस के अनन्तर जिन नियमों के अनुकूल शास्त्रार्थ हो उनका निश्चय करना योग्य है जिस २ विषय में शास्त्रार्थ हो वह भी लिखना चाहिये।

इस पत्र के जाने पर जैनियोंका द्वितीय पत्र जो संस्कृत में आया वह यह है —:

श्रीमदार्यमतानुयायिन:
भवदीरितं पत्रमुपलब्धम्

शास्त्रार्थसमय: संस्कृतएव भविष्यतीति नियम:। मध्यस्थभवनप्रकारश्च पूर्वपत्रएव लिखित: मञ्जूलालप्यारेलालौप्रबन्धकर्त्तारौ जैनपाठशालास्थानं च हस्ताक्षराणिकारयितुमागतेभ्यो गंगारामवर्म्मभ्योऽर्पणि विषयनिर्णयश्च शास्त्रार्थकाले भविष्यति यतो वयं यूयञ्च न दूरस्था: परन्तु समयनियममध्यस्थानां-लिखितानामप्युत्तरं भवद्भिर्नालेखि। शास्त्रार्थलिखितसमयमतीत्यपत्रोत्तरप्रदाने किं कारणम्।

संवत् १९४५ प्र०चै० शु० ३ वृ
१२ बजे दिन के
ह: छेदालालजैनधर्मिण:

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यमत के अनुयायि ! आपका भेजा पत्र मिला शास्त्रार्थ का समय वही होगा जो हम पूर्व संस्कृत में लिख चुके हैं और मध्यस्थ होने का प्रकार भी पूर्व पत्र में लिख चुके हैं । हमारी ओर से मंजूलाल प्यारेलाल प्रबन्धकर्त्ता होंगे । शास्त्रार्थ का स्थान जैन पाठशाला होना चाहिये सो हस्ताक्षर कराने को आये गङ्गाराम वर्मासे कह दियाथा । विषय का निर्णय शास्त्रार्थ होने के समय हो जाय गा क्योंकि हम और तुम दोनों दूर नहीं हैं । परन्तु समय नियम और मध्यस्थ विषयक उत्तर आपने नहीं लिखा । शास्त्रार्थ का समय जो १० बजे का लिखा था उस के पश्चात् उत्तर देने में क्या कारण है? ॥

इस पर आर्य्य समाज की ओर से उत्तर (संस्कृतहीमें)

ओ३म्

मावन्मारजित्कक्षान्तसदसदुदन्तालब्धगरिष्ठवरिष्ठाः तत्रभवतां पत्रमातुङ्गितम् । श्रुतार्थनिहाः पूर्वभाविनियमेतरेतरोररीकृतानन्तरं वादिप्रतिवादिभ्यां समसातजनने चोरीकर्त्तव्यः । जयाजयनिर्णेता कश्चिदपि भवितकुं नार्हतकि कस्यचित्सार्वभौमसर्वपरीक्षकाधिगतयाथातथ्यार्थस्य पक्षद्वयवक्तिविवेचनसामर्थ्याधिष्ठितत्वाभावात् । वादिप्रतिवादिनोर्लेखनद्वारास्पष्टीकृतो विषयएव जयाजयसूचको भविष्यतीति मन्यध्वम् । यच्चोक्तं शास्त्रार्थकालएव विषयो निर्णेयइति तन्न कुतः सति कुड्ये चित्रं भवतीतिवत् पूर्वमेव विषयो निर्णेतव्यः । यच्चोल्लिखितं शास्त्रार्थसमयमतीत्योत्तरप्रदाने किं कारणमिति तत्त्वस्माभिरङ्गीकृतमन्तरेणात्ययनं वक्तुमशक्यम् ।

ह: गङ्गारामस्य

प्र० चै० शु० ३ सं० ४५

भाषार्थ— श्रीमान् सहनशील सत्यासत्य को प्राप्त होने वाले महाजनोंमें श्रेष्ठ जैनधर्मावलम्बियो !

आप का पत्र आया—शास्त्रार्थ का समय पूर्व होने वाले नियम परस्पर स्वीकृत हो जाने के पश्चात् दोनों पक्षवालों की सम्मति से स्वीकार करना चाहिये जय पराजय का निश्चय कर्ता कोई निज मनुष्य

नहीं हो सकता। कोई सब पृथिवी पर सर्वोपरि शास्त्री सत्य वक्ता पक्षपात-रहित यथार्थभाव का ज्ञाता दोनों पक्ष का विवेचन करने में समर्थ अधिष्ठाता हो वह मध्यस्थ हो सके सो सर्व गुणाकर पुरुष का मिलना प्रायः असम्भव होनेसे मध्यस्थ होना आधुनिक समय पर दुर्लभ है इस लिये वादि प्रतिवादि के लेखद्वारा स्पष्ट किया हुआ विषयही जय पराजय का सूचक हो जाय गा अर्थात् उस लेख से अपनी २ बुद्धि के अनुसार दोनों पक्ष में बलाबल समझ लेंगे। और जो आपने कहा कि शास्त्रार्थ होते समय विषय का निश्चय करलें गे सो मेरी अल्प बुद्धि से ठीक नहीं क्योंकि जबतक भित्ति (दिवार) न बन जावे तबतक उसपर चित्र विचित्र चिन्ह धरना बन नहीं सकता इसी प्रकार पहिले विषय का निश्चय कर लिया जाय तब उस पर शास्त्रार्थ का आरम्भ होसक्ता है। और जो लिखा कि शास्त्रार्थ का समय होजाने बाद उत्तर देने में क्या कारण है सो जब केवल अपने पक्ष की सम्मति से तुम लोगों ने नियत किया और हमलोगों की उस पर कुछ सम्मति न हुई तो (इक तर्फी डिगरी हुई) हमारा पत्रोत्तर देना काल व्यतीत कर हुआ यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है।

इस पर जैनियों का जो तृतीय पत्र आया वह यह है कि॥

श्रीमदार्यमतानुसारिणः

द्वितीयपत्रङ्घण्टात्रयकालात्ययउपलब्धम्

भवद्भिर्जयाजयनिर्णेतृमध्यस्थासम्भवोऽभाणि—लेखद्वारा जयाजयस्पष्टताऽङ्गीकृता शास्त्रार्थसमयात्पूर्वम्विषयनिर्णयश्चापेक्ष्यते शास्त्रार्थस्थानसमयसंस्कृतभाषाशास्त्रार्थविषयेकिञ्चिदपि नाऽभाषि—यदि विषयनिर्णयोत्तरमेव शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरा मुद्रापणङ्किंविचार्य्याकारि मध्यस्थासम्भवे शास्त्रार्थासम्भवः। लेखतः शास्त्रार्थस्य वादिप्रतिवादिनोर्विदेशस्थत्वेऽपि सम्भवेऽत्र तत्तत्समाजमन्त्र्यादीनां सङ्गमकृतेः किं प्रयोजनम्। तथापि यदि शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि सप्त घण्टा ध्वानिमारभ्यदशघ-

७टाध्वनिपर्य्यन्तं जैनपाठशालास्थान आगत्य कर्त्तव्यः विषयोऽप्येतत्पत्रोत्तरे भवद्भिरेव लेख्यः—नोचेदलम्वृथा समयात्ययेन—

सं० १९४५ प्र०चै०शु०३ व ४ वजे   ह० छेदालालजैनधर्मिणः ।

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्य मतानुयायियो ! आप का दूसरा पत्र तीन घण्टा में मिला आपने जयपराजय के निश्चयकर्त्ता मध्यस्थ का होना असम्भव कहा और लेखद्वारा जयपराजय स्पष्टता स्वीकार की और शास्त्रार्थ होने से पहिले विषय का निर्णय चाहते हो ! शास्त्रार्थ का स्थान समय तथा संस्कृत वा भाषामें होने के विषय में कुछ नहीं कहा जो विषय का निश्चय होने पश्चात्‌ही शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो समाचार पत्रोंमें विषय का निर्णय किये विना क्या विचार के छपाया था (हमारा विचार है कि) मध्यस्थ का होना असम्भव है तो शास्त्रार्थ होना भी असम्भव है लेखद्वारा शास्त्रार्थ तो वादिप्रतिवादी के विदेशस्थ होने में भी हो जाना सम्भव है । फिर उस २ समाज के मन्त्री आदि के यहां एकत्र करने का क्या प्रयोजन था तथापि यदि शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो ७ वजे से १० वजे तक जैनपाठशाला स्थान में आकर करना चाहिये । शास्त्रार्थ का विषय भी इस पत्र के उत्तर में आप ही लिखिये और यह न होतो व्यर्थ समय न खोना चाहिये अर्थात् शास्त्रार्थ का नाम भी न लेना चाहिये ॥

विशेष—सब महाशयों को ध्यान देना चाहिये कि हमारे लेख में और इन में क्या भेद है । हमने लिखाथा कि दोनों पक्षकी सम्मतिसे पहिले नियम स्थिर हो जावें फिर शास्त्रार्थ के समयादि का विचार किया जावे सो नियमों के लिये तो कुछ उत्तर न दिया इस कारण एक तो यह है कि जैनी लोग उस पत्रके अभिप्राय को यथावत् समझे ही नहीं और कदाचित् कुछ समझे भी होंतो शास्त्रार्थ करने से डरते हैं और बखेड़ा करके पीछा छुड़ाया चाहते हैं । शास्त्रार्थ का विषय समाचार पत्रों में छपाया तो उस का अभिप्राय यह कोई सिद्ध नहीं कर

सकता कि विनाही नियम और विषय के शास्त्रार्थ हो जायगा। ऐसा हो तब तो विना कारण के भी कार्य्य हो जाया करे जब कोई कहे कि मैं अमुक समय भोजन बनाऊंगा तो उस पर ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते कि भोजन बनाने की प्रतिज्ञा के समय यह क्यों नहीं कहा कि मैं आटा से भोजन बनाऊंगा। इस जैनियों के पत्र में कई अशुद्धि हैं जैसे अभाणि अभाषि आदि अस्थान में प्रयुक्त हैं (पूर्वम्विषय) (किम्विचार्य) (दलम्वृथा) इत्यादि में परसवर्ण अनुस्वार को मकार लिखना सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि ओष्ठ्यवकार के परे परसवर्ण हो सकता है दन्त्योष्ठ्यके परे नहीं होता। इत्यादि अनेक २ अशुद्धियां हैं॥

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से चतुर्थ उत्तर॥

ओ३म्

श्रीमत्सौमन्तमतावलम्बिषु

भावत्कपत्रमागतमालोक्येदमुत्तरमाविष्क्रियते शास्त्रार्थस्थानसमय—संस्कृतभाषाविषयकमुत्तरं प्राकृतभाषानिर्मितनियमेष्वाविष्कृतमस्माभिः। समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरेणैव शास्त्रार्थो भवितुमशक्य इत्यत्र किं वाधकं मन्यते भवद्भिः। शास्त्रार्थः सम्मुख एव स्यात्तस्य लेखनं तु सर्वसाधारणोपकारार्थपरिणामनिष्कर्षणार्थं च कर्त्तव्यमेव। समयश्चभवद्भिर्लिखित एव स्वीक्रियतेऽस्माभिरपि। यदि तत्र भवन्तो वास्तवेन शास्त्रार्थं चिकीर्षन्ति तर्हि मुहुर्मुहुः पत्रगमनागमनेन किमपि प्रयोजनं नास्ति किन्त्वस्मल्लिखितशास्त्रार्थविषयान्प्राकृतभाषानिर्मितनियमांश्च स्वीकुर्वन्तु यदि काचिद्विप्रतिपत्तिःस्यात्तदाभिमतविषयनियमांल्लिखित्वा प्रेरयन्तु। अद्यतु भवन्नियमितकाले शास्त्रार्थो भवितुमशक्यः। यतः कालादारभ्यसायं प्रानर्वाश्वो भविता स लेख्यो भवद्भिर्यतः पूर्वं वयमपि जानीयामेति शम्॥

ह: गंगारामस्य ४॥ वजे

भाषार्थ—श्रीमान् जैन धर्मियोंके समीप निवेदन—

आप का पत्र आया उस का उत्तर दिया जाता है—शास्त्रार्थ का स्थान समय और संस्कृत वा भाषा में होने के विषयक उत्तर भा

षा में बनाये नियमों में हैं सो आप के पास भेजे जाते हैं। समाचार पत्रों में हम लोगों ने ऐसा कहां छपाया है कि विषय निश्चय किये विना शास्त्रार्थ होगा विषय का निश्चय हुए विना शास्त्रार्थ होना ही अशक्य है इस में क्या आप कुछ वाधक समझते हो? ॥ शास्त्रार्थ सम्मुख ही होना चाहिये उस का लिखा जाना सर्वसाधारण के उपकारार्थ और परिणाम निकालने के लिये है । आपने जो ७ बजे से १० बजे तक समय लिखा उस को हम लोग भी स्वीकार करते हैं ॥

यदि आप लोग वस्तुतः शास्त्रार्थ किया चाहते हो तो बार २ पत्रों के आने जाने से क्या प्रयोजन है ? । किन्तु हमारे लिखे शास्त्रार्थ के विषय और भाषा में बनाये नियमों को स्वीकार कीजिये यदि कुछ विरुद्ध समझो तो अपने अभिमत विषय और नियमों को लिख कर भेजो। आज तो आप के नियत किये समय में शास्त्रार्थ होना अशक्य है पर कल प्रातःकाल वा सायंकाल जब से जब तक होना चाहिये सो आप लिखिये जिस से हम लोग भी पहिले से जानलें और उद्यत रहें।

इस उक्त पत्र के साथ शास्त्रार्थ के निम्न लिखित नियम और विषय जैनियों के पास भेजे गये थे

१—शास्त्रार्थ में पांच पुरुष प्रबन्धकर्ता होने चाहिये दो २ उभय पक्ष की ओर से रहें जिन को अपने २ पक्ष वाले नियत करें एक प्रबन्धकर्त्ता सभापति मध्यस्थ हो जिस को दोनों पक्ष वाले सम्मति कर नियत करें ॥

२—शास्त्रार्थ किसी मध्यस्थ के स्थान में वा सरकारी स्थान में होवे अथवा अन्यत्र जिस को उभय पक्ष स्वीकार करे ॥

३—शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष के बराबर मनुष्य होवें किन्तु सर्वसाधारण मनुष्य न आने पावें

४—दोनों पक्ष वाले शास्त्रार्थ का विषय आरम्भ से पहिले अपनी २ ओर से लिख के एक दूसरे के हस्ताक्षर कराकर सभापति के पास रक्खें

५—सभा में एक बार में एक ही वादी वा प्रतिवादी बोले अन्य कोई किसी के बीच में न बोलने पावे

६—प्रश्न के लिये जितना समय रहे उस से चौगुना समय उत्तर दाता को मिले

७—अपनी २ पक्ष की ओर से अधिक से अधिक पांच २ मनुष्य शास्त्रार्थ के लिये नियत करें

८—जो २ विषय शास्त्रार्थ के लिये नियत हो उस से विरुद्ध पक्ष पर कुछ भी विषय बीच में न छेड़ा जावे

९—यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रति में लिखा जावे दो प्रति दोनों पक्ष की ओर से और एक सभापति की ओर से लिखी जावे। उन सब प्रतियों पर प्रश्न वा उत्तर दाता के तथा सभापति के हस्ताक्षर बीच २ होते जावें

१०—शास्त्रार्थ दोनों पक्ष वालों की सम्मत्यनुसार संस्कृत में ही हो पर प्रश्न वा उत्तर लिखाने पश्चात् उस का आशय नागरी भाषा में अनुवाद कर सभा के सब मनुष्यों को सुना दिया जाया करे

११—एक साथ में एक प्रश्न ही हो सकेगा उस पर उत्तर प्रत्युत्तर पांच बार वा दश बार से अधिक न होना चाहिये॥

१२—संस्कृत की अशुद्धि शुद्धि पर कुछ विचार आपड़े तो जिस शास्त्र के अनुसार निश्चय किया जावे उस को प्रथम नियत कर लेवें॥

१३—शास्त्रार्थ जैन धर्मियों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो पर चार घण्टे वाद उठने पर किसी पक्ष का पराजय न समझा जावेगा अर्थात् प्रति दिन चार घंटा से अधिक न होना चाहिये॥

१४—उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्ता पण्डित लोग अपने २ मत को मानते अवश्य हों अर्थात् अन्य मतावलम्बि पुरुष अन्य की ओर से नियत न हो सकेगा॥

१५—दोनों पक्ष वाले वादी प्रतिवादी प्रश्न वा उत्तर करने के लिये १० मिनट तक परस्पर सम्मति कर सकेंगे ॥

१६—यदि कोई अपने पक्ष के वादी प्रतिवादी को बदला चाहे तो सभापति की आज्ञा से बदल सकेगा । सभापति की आज्ञा विना सभा में कोई अन्य मनुष्य बीच में न बोल सकेगा

शास्त्रार्थविषय

१—अनन्यकर्त्तृकायाः सृष्टेः कर्त्ता सनातन ईश्वरः कश्चिदस्ति न वा

२—जीवः कोऽस्ति तस्य चेश्वरेण कः संबन्धः ॥

३—चतुर्विंशतिस्तीर्थंकराः केऽभूवन् किं च तेषां सामर्थ्यम् । कियन् परिमाणानि च तच्छरीराणि

४—जीवरक्षा च क पर्य्यन्तं भवितुं शक्या ॥

५—रथयात्रा काऽस्ति किमर्थं च कर्त्तव्या ॥

६—अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं तत्त्वज्ञानं वेति ? ॥

१—भाषार्थ—जिस का एक सर्वोपरि से भिन्न कर्त्ता नहीं हो सकता ऐसी सृष्टि का कर्त्ता सनातन ईश्वर कोई है वा नहीं ? ॥

२—जीव कौन है और उसका ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है । ॥

३—चौबीस तीर्थंकर कौन हुए उन का क्या २ सामर्थ्य था ? । और कितने २ बड़े उन के शरीर थे ?

४—जीव रक्षा कहां तक हो सकती है ?

५—रथयात्रा क्या है और किस लिये करनी चाहिये ? ।

६—और को और समझना मिथ्या ज्ञान है वा तत्वज्ञान ?

इस पर जैनियों का जो पत्र आया वह यह है ॥

श्रीमदार्य्यमतानुयायिनः !

समक्षतो लेखनेन च प्रबन्धकर्त्रादिनिर्णयेऽपि यूयन्नायाताः शास्त्रार्थनियतसमयद्वयात्ययनञ्च कृतम्—इदानीं दशघण्टा ध्वनिता अतो यूयं शास्त्रार्थङ्कर्त्तुमसमर्था इत्यनुमितामित्यलम्

संवत् १९४५ प्र० चै० शु० ३ वृ १० बजे ह: छेदालालजैनधर्मिणः

भाषार्थ—श्रीमान् आर्य्यमतानुयायियो ! सामने और लिखने द्वारा भी प्रबन्धकर्ता आदि का निश्चय हो जाने पर भी तुम नहीं आये शास्त्रार्थ के नियत किये दो समय भी टाल दिये अब दश बज गये इस से तुम लोग शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो यह अनुमान है ॥

विशेष—इस से पहिले जो पत्र भेजा उस के साथ शास्त्रार्थ के नियम और विषय लेकर मंत्री और श्रीचतुर्वेदी कमलापति जी सभापति सेठ फूलचन्द जी के पास इस अभिप्राय से गये कि पत्रों द्वारा नियमादि शीघ्र निश्चय होने कठिन हैं और ऐसा ही झगड़ा पड़ा रहा तो कल ता० १६ को भी शास्त्रार्थ न हो सकेगा इस लिये सामने नियमों का निश्चय शीघ्र होकर कल से शास्त्रार्थ होने लगे। मंत्रीने सेठ जी से कहा कि आप इन नियमों और विषयों को देख सुन कर सम्मति कर लीजिये इस पर भी उन के सहकारी लोगों ने यही उत्तर दिया कि सब बातों का निश्चय पत्र द्वारा कीजिये। इस पर मंत्री आदि ने बहुत कुछ कहा पर उन्हों ने सिवाय लवड़ धों २ के प्रबन्ध की बात एक भी नहीं माना इस के पश्चात् मंत्री आदि चले आये और नियम जो लेगयेथे उन को पत्र द्वारा भेजे उस का उन्हों ने कुछ उत्तर न दिया और एक पत्र (पूर्वोक्त) फिर लिख मारा जिस का हमारे पत्र से कुछ संबन्ध नहीं हमने कुछ लिखा उन्हों ने उत्तर कुछ और ही दिया (आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे) इस उक्त पत्र में लिखते हैं कि " प्रबन्ध कर्तादि का निश्चय हो चुका तो भी तुम नहीं आये" क्या हम लोग इन के नौकर हैं जो इन के बुलाने मात्र से इन के घर पर शास्त्रार्थ के लिये चले जाते और प्रबन्ध कर्तादि का निश्चय कहां हो चुकाथा? क्या मिथ्या लिखते लज्जा नहीं आई ? शास्त्रार्थ के मूल कारण नियमों पर तो अभी झगड़ा ही हो रहा है। विना ही नियमों के शास्त्रार्थ का समय अपने मन माना लिख भेजा क्या तुम्हारा लिखा समय राजाज्ञा के तुल्य था जिस को

हम निर्विवाद मान लेते (जो महाशय इस पर ध्यान देंगे उन को यथावत् ज्ञात हो जायगा कि जैन लोग विना नियमों के शीघ्र हल्ला गुल्ला कर के अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे) इस के पश्चात् इस उक्त पत्र का आर्य्यों की ओर से उत्तर दिया गया—

श्रीमज्जैनमतानुयायिनः

पूर्वमप्यस्माभिरलेखि नियमनिर्णयमन्तरा नैकान्ततस्तत्रभवन्तो वक्तुमर्हन्ति यन्नियतसमयद्वयमतिक्रान्तमिति यदि नियमपत्रं स्वीकृत्य तत्र हस्ताक्षराणि कृत्वा ब्रूयुस्तदा तु प्रमाणीकृतं स्यात् । यदि भवन्तः शास्त्रार्थं कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि सद्यो नियमान् स्वीकृत्य हस्ताक्षराणि कृत्वा प्रेरयन्तु वयं चेदानीमेव शास्त्रार्थं कर्त्तुं सन्नद्धाः । यदि नियमानन्तरेण कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि ज्ञायते न शास्त्रार्थं चिकीर्षन्तीति । अस्माभिश्च यत्पत्रं प्रेरितं तस्योत्तरं किमपि न दत्तं तदिदानीं सद्योदातव्यमिति ।

हस्ताक्षराणि
प्र० चै० शु० ३ सं० १९४५ गङ्गाराम वर्म्मणः फिरोजाबादस्थार्यसमाजामात्यस्य

भाषार्थ—पहिले भी हम ने लिखा था (कि सब से पहिले नियम स्थिर करना चाहिये तब समय नियत किया जावे) नियमों का निश्चय किये विना एक अपनी ओर से आप नहीं कह सकते कि तुमने दो समय टाल दिये ऐसे तो हम भी कह सकते हैं कि तुमने हमारे लिखे नियमों को टाला कुछ उत्तर नहीं दिया इस से तुम्हारा पराजय हुआ । यदि आप नियम पत्र को स्वीकार कर हस्ताक्षर करके भेज देते तो हमारे न आने का उल्हाना मान भी लिया जाता । यदि आप शास्त्रार्थ करना वस्तुतः अन्तःकरण से चाहते हैं तो शीघ्र नियमों को स्वीकार करके हस्ताक्षर कर भेजिये और हम लोग इसी समय शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं । यदि आप नियमों के विना ही हल्ला गुल्ला किया चाहते हो तो ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ करने की इच्छा भीतर से नहीं है । हम लोगों ने जो पत्र भेजा था उस का उत्तर आप ने कुछ नहीं दिया सो उत्तर शीघ्र दीजिये ।

यह उक्त पत्र जब भेजा गया तब इसपर जैनियों ने कुछ उत्तर नहीं दिया उन की ऐसी लीला देख कर सामाजिक पुरुषों ने बस्ती के भद्र पुरुषों को बुला कर सेठजी के पास भेजा कि यदि आप लोगों को शास्त्रार्थ करना है तो नियमों को स्वीकार कर लीजिये प्रयोजन यह था कि हमलोग जो नियम पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं उन को मध्यस्थ होकर देख लीजिये कि वे नियम दोनों पक्ष की ओर एकसा सम्बन्ध रखते हैं वा हमारा कुछ स्वार्थ है? इस पर नागरिक मध्यस्थ लोगों ने हमारी उन की बातें सुनके और नियमादि देखकर सेठ फूलचन्द जी और अन्य जैनियों के पास जाकर कहा कि आर्य्य लोग निष्पक्षपात होके नियम पूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं आप लोग स्वीकार क्यों नहीं करते? इस पर जैन लोगों ने अनेक जगड्वाल की बातें कहीं जिससे शास्त्रार्थ के होने की कोई आशा न जान पड़ी और उन नागरिक भद्र जनों को विश्वास हो गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हठते हैं। ऐसा हाल देख के उन लोगों ने आर्य्यसमाज की उपस्थित सभा में आके स्वयमेव उच्चस्वर से कहा कि हम को ठीक निश्चय हो गया कि आर्य्यों के सामने जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं कर सकते किन्तु टालाटूली करते हैं हम सब के सामने लिख सकते हैं कि आर्यों का जय और जैनों का पराजय हुआ। इसपर आर्य्यसमाज के लोगों ने उन सत् पुरुषों से एक पत्र लिखा के हस्ताक्षर करा लिये वह पत्र यह है:—

हम सत्य परमात्मा को जान कर कहते हैं कि मैं आर्यों की तरफ से जैनियों के पास गया मैंने शास्त्रार्थ करने में जैनियों का इनकार पाया हस्ताक्षर लक्ष्मी चन्द गुप्त ॥

ह० गुलज़ारी लाल

ह० रघुबर दयाल)

और जितने आर्य्यजन एकत्रित हुए थे सब को विश्वास हो गया कि अब शास्त्रार्थ नहीं होगा कल अपने २ घर चलेंगे ! यह सब समाचार ता: १५ मार्च को हुआ इसी रात्रि के १२ बजे तक समाप्त हुआ सब लोग सो गये ।

ता० १६ मार्च ८८ ई० को प्रातःकाल आर्य्य लोग नित्य कृत्य शौच संध्यादि करके आये तब तक शहर में हल्ला मच गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हट गये बहुतेरे लोगों ने तो जैनि सेठ जी से जा २ कर कहा भी कि यह तो सहज में ही तुम पराजय करा बैठे तब तो सेठ जी को बड़ा बिचार पड़ा इधर आर्य्यसमाज की ओरसे भी दो एक पुरुष गये और सेठ जी से कहा कि अबभी शास्त्रार्थ करावें तो ठीक २ निश्चय कीजिये नहीं तो हमारे पं० आज अपने २ स्थान को जावेंगे । इस पर सेठ जी ने कहा कि हमारे अनुमतिकर्ता मंजूलाल प्यारेलाल जी आ जावें तब सलाह करके उत्तर देवें पश्चात् सामाजिक जन चले आये इस के पश्चात् सेठ जी ने अपना उपहास जान शहर के दो एक मध्यस्थ पुरुष समाज में भेजे और उन्होंने कहा कि जैनि लोग शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और विशेष कर मध्यस्थ नागरिक लोगों की सम्मति हुई कि जैनियों की ओर से सेठ फूलचन्द जी और आर्य्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्मा जी दोनों महाशय जैन पाठशाला में बैठ कर नियमों को निश्चय कर लेवें और उन को दोनों पक्ष वाले स्वीकार करें जैन लोगों ने भी यह स्वीकार कर लिया । सब की सम्मति से पं० भीमसेन शर्मा और चतुर्वेदी कमलापति जी सभापति जैन पाठशाला में गये और सेठ फूलचन्द जी वहां इसी लिये जा कर बैठे थे । वहां पहुंचकर दोनों की सम्मति से विशेष कर सेठ फूलचन्द जी की सम्मति से नियम जो पहिले लिखे हुए थे उन्हीं को काट बढ़ा के ठीक किया और यह ठहरा कि इन नियमों की शुद्धप्रति कराली जावे सभा के आरम्भ

में पांचो प्रवन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर भी हो जावें इस प्रकार बातें चीतें होते २ दश बज गये थे और बारह बजे से चार बजे तक शास्त्रार्थ ठहरा था इस लिये उसी समय नक़ल हो कर हस्ताक्षर नहीं हो सकते थे और शास्त्रार्थकर्त्ताओं को भोजन भी करने थे । पश्चात् उन नियमों की शुद्ध नक़ल कराई गयी और सब ने भोजन किये तबतक शास्त्रार्थ का समय आ गया ॥ मनुष्यों को शा० में जाने के लिये टिकट बंट गये थे टिकट सेठ जी की ओर से बांटे गये थे उन नियमों को लेकर ठीक बारह बजे दिन को आर्य्य लोग जैन पाठशाला में पहुंचे और जैन लोग भी आये कोतवाल साहब कितने ही यम दूतों के साथ प्रवन्धार्थ आये जब सब लोग यथावस्थित बैठ गये तब यह प्रस्ताव आर्य्यों की ओर से हुआ कि जो नियम पं० भीमसेन शर्मा और सेठ फूलचन्द जी ने नियत किये हैं वे सभा में सुना दिये जावें पश्चात् प्रबन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर हो जावें तब इन नियमों के अनुसार कार्य होवे इसपर सभा की आज्ञा हुई कि नियम सुना दियेजावें—वे नियम ये हैं ।

(१) सभा प्रवन्ध के लिये पांच पुरुष प्रवन्धकर्त्ता नियत हुए आर्य्यों की ओर से चौवे कमलापति जी और पं० गंगाधर त्रिपाठी जी जैनों की ओर से लाला मंजूलाल जी और लाला प्यारेलाल जी और उभय पक्ष की ओर से एक चौवे ज्वालाप्रसाद जी सभापति० इन पांचो महाशयों को निम्न लिखित नियमानुसार सभा का प्रवन्ध करना होगा ।

(२) सभा में वे महाशय जांय गे कि जिन के पास टिकट होगा पर वे सभास्थ पुरुष दो सौ से अधिक न हों गे ।

(३) प्रश्नोत्तर दोनों ओर से बराबर ही होने चाहिये प्रश्न के लिये पांच मिनट और उत्तर देने के लिये २० मिनट समय नियत किया है और जब तक एक प्रश्न पर पूरी वार्त्ता न हो जाय तब तक दूसरा विषय न छेड़ा जाय ।

(४) उभय पक्ष की ओर से दो २ पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित हो कर वार्त्ता करैं अर्थात् आर्य्यों की ओर से पं० देवदत्त जी और पं० भीमसेन जी और जैनों की ओर से पं० छेदालाल जी और पं० पन्नालाल जी इन से भिन्न कोई न बोल सके गा ।

(५) यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जायगा दो प्रति उभय पक्ष की ओर से तीसरी सभापति की ओर से और इन तीन प्रतियों पर उभय पक्ष के पं० और सभापति के हस्ताक्षर होने चाहिये ।

(६) शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की सम्मत्यनुसार संस्कृत ही में होगा परन्तु उसी जगह संस्कृत का अनुवाद करके नागरी भाषा में सब को सुना देना चाहिये ।

(७) शब्द की शुद्धाऽशुद्धि पर कुछ विशेष वार्त्ता वा बिचार न किया जाय गा सज्जन लोग छप जाने पर अपने आप ही जान लेंगे ।

(८) उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता अपने २ ही मत के मानने वाले हों अर्थात् अन्यमतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से न बोलें गे

(९) उभय पक्ष वाले अपने २ वर्ग में १० मिनट से अधिक सम्मति न कर सकेंगे ।

(१०) शास्त्रार्थ जैनों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो पर चार घंटे से अधिक प्रतिदिन न होगा समय की पूर्त्ति पर उठने में जयाजय न समझना चाहिये ।

(११) ता० २० मार्च को शास्त्रार्थ बन्द रहे गा कदापि साहब कलेक्टर बहादुर आज्ञा दें तो हो सके गा ।

ये सब नियम सुनाये गये इस पर जैन लोगों ने अनेक शंका पैदा की और कहा कि ये नियम हमारे साथ नहीं नियत हुए इस प्रकार परस्पर बहुत से झगड़े होते २ छठे नियम पर अधिक विवाद हुआ इस

का कारण यह था कि आर्य लोग कहते थे शास्त्रार्थ संस्कृत में हो और जैन लोग भाषा में होने का हठ करते थे। आर्यलोग संस्कृत में होनेपर इसलिये बलदेते थे कि जैनि लोगों ने प्रथम ही पत्र में संस्कृत में होने की प्रतिज्ञा की थी उस समय जैनों ने समझा था कि हम अपनी ओर से पं० मिहिरचन्द और जियालाल (जिन को कुछ धन देकर लाये थे) से शास्त्रार्थ करावेंगे वस्तुतः जैनियों में कुछ भी संस्कृत विद्या का बल नहीं था परन्तु उन में (निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। जैसे वृक्ष रहित देश में एरण्ड का वृक्ष भी बड़ा वृक्ष मालूम होता है वैसे) छेदालाल पन्नालाल साधारण विद्यार्थियों के तुल्य कुछ २ संस्कृत जानते थे सो सेठ फूलचन्द जीने भी इन के ऊपर शास्त्रार्थ का आरम्भ नहीं किया था, किन्तु पं० मिहिरचन्द और जियालाल (भाड़े के टट्टुओं) के भरोसे शास्त्रार्थ का बल बांधा था और इसी बल से संस्कृत के करने की प्रतिज्ञा लिखाई थी पर जब नियम स्थिर किये गये तब यह निश्चय हो गया कि अन्य पक्ष का पं० अन्य की ओर से मुख़त्यार बन के शास्त्रार्थ न कर सकेगा अर्थात् जो २ पं० जिस २ पक्ष की ओर से नियत हो वह उस मत को यथावत् मानता हो इस नियम से भाड़े के पण्डित तो निकल गये जब जैनियों का भाड़े का बल टूट गया तब संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इनकार करते थे और ऊपर से प्रसिद्ध करते थे कि सब लोग कुछ नहीं समझेंगे इस से भाषा में होवे। इस का उत्तर आर्य लोग देते थे कि संस्कृत की भाषा करके सभा में समझा दी जाया करेगी और यह भी बल देते थे कि तुम लोगों ने प्रथम प्रतिज्ञा की थी इस लिये संस्कृत में ही होना चाहिये इस प्रकार नियमों पर झगड़ा होते २ जैनियों ने एक मध्यस्थ का झगड़ा छेड़ दिया इस पर दोनों ओर से बहुत विवाद होता रहा। जैनियों की ओर से पं० छेदालाल ने कहा कि स्वामी विशुद्धानन्द जी श्रीधर जी तथा जो २ पं० आर्य्य समाजी और जैनियों

के मत में नहीं उन में से चाहे जो पं० मध्यस्थ कर लिये जावें जो शास्त्रार्थ लिखापढ़ी द्वारा हो सो उन के पास भेज दिया जावे जिस के पक्ष को वे अच्छा बतलावें उस का पक्ष ठीक समझा जावे। आर्य्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्मा ने कहा कि प्रथम ऐसा पुरुष मिलना ही दुर्लभ है कि जो सर्वथा निष्पक्ष और निर्लोभ हो कर सत्यकहे बहुधा पं० लोग थोडे २ धन के लोभ से ईसाइयों तक को अपने मत के खण्डनविषयक पुस्तक बना देते हैं (जैसे पं० मिहिरचन्द्रादि यद्यपि जैन मत को मानते नहीं तथापि धन लोभ से नास्तिकों की ओर से वेद का खण्डन करने आये हैं) तो किस का विश्वास किया जावे? और कदाचित् कोई निष्पक्ष पुरुष मिल भी जावे और वह धर्मपूर्वक किसी एक पक्ष का पराजय कह देवे तो क्या उस समुदाय के लोग सब उस पक्ष को छोड़ देवेंगे) मेरी समझ में जैन लोग तो ऐसे हठीले हैं कि उन के तीर्थंकर पार्श्वनाथ साक्षात् आकर जैन पक्ष को पराजित कहें तो भी न मानेंगे। अर्थात् इस मध्यस्थ के झगड़े से यही प्रयोजन होगा कि हजार पांच सौ रुपये खर्च करके अपने पक्ष के विजय का डंका पं० रूप बाजीगरों से बजवा देंगे। इस पर बहुत काल तक विवाद होता रहा और शास्त्रार्थ का आरम्भ न हुआ। आर्य लोग कहते थे कि पहिले नियम भले ही मतमानो किन्तु अब पंचों की सम्मति से और नये नियम बना लिये जावें तथा मध्यस्थ कोई नहीं करना चाहिये तथा बिना नियमों के हम शास्त्रार्थ न करेंगे।

जैन लोगों का कथन था कि हम नियम एक भी न मानेंगे और मध्यस्थ कोई अवश्य होवे। ऐसा होते २॥ अढाई घंटे बीत गये सभा के सब लोग व्याकुल हो गये और मालूम हुआ कि सभा उठना चाहती है तब कोतवाल साहब ने कहा कि आज जिस पक्ष के लोग (चाहें किसी कारण से) शास्त्रार्थ न करेंगे उन्हीं का पराजय समझा जायगा।

यद्यपि आर्य्यसामाजिक लोगों का विचार नहीं था कि विना नियमों के ऊटपटांग शास्त्रार्थ किया जावे। (अनुमान से ज्ञात होता है कि जैनी लोगों ने यह सम्मति कर लीथी कि आर्य्य लोग विना नियमों के शास्त्रार्थ नहीं करें गे इस लिये हम नियमों को तोड़ देवें और कह देवें गे कि आर्य्य लोगों ने शास्त्रार्थ नहीं किया इस से उन का पराजय हो गया) तो भी अनिष्ट परिणाम देख कर विचार किया कि हम अब विना ही नियमों के शास्त्रार्थ करें गे। परन्तु कोतवाल साहब ने उर्दू में शास्त्रार्थ कर्त्ता दोनों पक्ष के पण्डितों के नाम लिख लिये थे। इस के पश्चात् दोनों पक्ष वालों का विचार हुआ कि शास्त्रार्थ होना चाहिये तब (अहमहमिका) झगडा हुआ कि पहिले कौन प्रश्न करे सभा सम्मति से यह निश्चय हो गया कि दोनों पक्ष वाले साथ ही अपना २ प्रश्न लिख के अपने २ प्रतिपक्षियों को दे देवें इस के अनुसार शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ।

शास्त्रार्थ का प्रारम्भ प्रथम दिन ता० १६ मार्च सन् १८८८ई०

प्रथम पत्र जैनियों का

प्रथम प्रश्न। भोविद्वज्जनवर्य्याः जगद्वृत्तिपदार्थानां प्रमेयत्वं सर्वसाधारणं ॥ प्रमेयसिद्धेः प्रमाणाधीनत्वेन ॥ प्रथमं प्रमाणनिर्णयोऽपेक्षितः अतः तत्स्वरूपं किं ॥ कति च भेदाः कश्च तद्विषयः किञ्च तत्फलं तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वेत्यस्माकम्प्रश्नः ॥

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

ह० पंनालाल जैनमतानुयायिनः।

भाषानुवाद—भो विद्वानों में श्रेष्ठ जनो! जगत् में वर्त्तमान पदार्थों का प्रमेय होना सर्वसाधारण (मिहिरचन्दकृत भाषानुवाद "पदार्थों को प्रमेय मानते हैं" ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान विषयक कोई क्रिया संस्कृत में नहीं है पदार्थ शब्द षष्ठ्यन्त है उस को द्वितीयान्त करना

ठीक नहीं केवल—अस्ति—सामान्य क्रिया का अध्याहार हो सकता है) और उस प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन होने से पहिले प्रमाण का निश्चय अपेक्षित है। इस लिये उस का स्वरूप क्या है। उस के भेद कितने हैं उस का विषय क्या है और उस प्रमाण का फल क्या है। उस का स्वतः प्रामाण्य वा परतः प्रामाण्य है यह हमारा प्रश्न है॥

इस के साथ ही आर्यों की ओर से प्रथम विचारणीय प्रश्न दिये गये।

प्रथम पत्र आर्यों का

सुखमार्गान्वेषणार्था सर्वस्य प्राणभृतः प्रवृत्तिस्तत्प्राप्तिर्जैनसम्प्रदायात्कथं सम्भवति। जिनशब्दस्य कः पदार्थो जैनशब्दस्य चानयोश्च कः सम्बन्धः। जिनशब्दवाच्यो यः कश्चिदभिमतोऽस्ति स नित्य आहोस्विदनित्यः। जिनजैन-पदार्थयोर्लक्षणं स्वरूपं च वक्तव्यमिति। तत्पूजनं सफलं विपरीतं वा यदि सफलं तर्हि किंफलकम्॥

ह० भीमसेनशर्म्मणः

ह० देवदत्तशर्म्मणः

भाषानुवाद—सुख का मार्ग खोजने के लिये सब प्राणी प्रवृत्त हो रहे हैं उस सुख के मार्ग की प्राप्ति जैन संप्रदाय से कैसे हो सकती है। जिन और जैन शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है अर्थात् जिन जैन का वाच्यार्थ क्या है और जिन तथा जैन का परस्पर (पितापुत्रादि) क्या सम्बन्ध है। जिनशब्द वाच्य जो कोई पदार्थ माना है वह नित्य है वा अनित्य? जिनजैन इन दोनों पदों और इन के वाच्य अर्थों के लक्षण और स्वरूप कहो। उस जिन का पूजन सफल है वा निष्फल? यदि सफल है तो उस का क्या फल है?।

विशेष—यह पत्र लिख कर जैनियों को दिया गया और इस से पहिला जैनियों का पत्र आर्यों के पास आया। सब महाशयों को विचारना चाहिये कि आर्य्यों के पत्र का जो उत्तर जैनियों ने दिया है वह आर्य्यों के प्रश्न से क्या सम्बन्ध रखता है? और साथ ही इस पर भी

ध्यान रक्खें कि जैनियों के पत्र का जो आर्य्यों ने उत्तर दिया है वह प्रश्न से कितना सम्बन्ध रखता है ? ॥

आर्य्यों के प्रथम प्रश्न के उत्तर में जैनियों का दूसरा पत्र

मानाधीनामेयसिद्धिरिति न्यायेन युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्प्रथमं प्रमाणनिर्णयः आवश्यकः । तन्निर्णयाभावे मेयानां निर्णयो दुर्घटः अतएव ममोक्तपूर्वपक्षस्य आदौ परामर्शो युक्तः ॥

ह० छेदालाल

ह० पंनालाल

भाषानुवाद—प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन है इस न्याय से तुम्हारे कहे (जिनजैनादि) पदार्थों के प्रमेयरूप होने से पहिले प्रमाण का निर्णय होना आवश्यक है क्योंकि प्रमाण निश्चय के विना प्रमेय का निश्चय होना दुर्घट है इस से हमारे कहे पूर्व पक्ष का पहिले विचार करना चाहिये । इस पत्र में (ममोक्तपूर्बपक्षस्य) यह बड़ी भारी अशुद्धि है विद्वानों को इन का पाण्डित्य अच्छे प्रकार ज्ञात हो जाय गा । इन पहिले दो पत्रों में बड़ी २ अशुद्धि कम हैं क्योंकि यह संस्कृत पण्डितों (मिहिरचन्द्रादि) ने पहिले ही लिखा दिया था कि तुम यह प्रश्न करना सो छेदालाल जैन ने सभा के बीच वह पर्चा निकाल के नकल कर दिया था और कुछ भूले तब मिहिरचन्द्र को पूछने लगे तब आर्य्यों ने कहा कि यह शास्त्रार्थ आर्य्यों और जैनियों का है यदि अन्य कोई पण्डित जैनियों को सहायता देवे तो उचित होगा कि प्रथम यज्ञोपवीत उतार के जैनी बन जावे । इस पर मिहिरचन्द्र चिड़ कर बोले कि मैं जैनियों की ओर नहीं किन्तु दोनों को पतित समझता हूं । परन्तु । यह विचार न किया कि धर्मशास्त्र के अनुसार (संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्) वैदिकधर्म से पतित जैनियों के साथ वर्षों से आचरण करने वा उन का धान्य खाने से मैं भी पतित हो गया हूं। यदि धर्मशास्त्रों को विचारते और अपने को पतित समझ लेते तो क्यों दूसरों को पतित

कहते ? । एक चोर दूसरे चोर को चोर नहीं कह सकता । चोर चोर मौसियाते भाई होते हैं । इस से मिहिरचन्द्र का अभिप्राय यह था कि मैं किसी की ओर नहीं दोनों को पतित समझता हूं परन्तु रुपये की ओर हूं क्योंकि रुपया पतित नहीं है उसी से प्रयोजन है । अब आर्य्यों ने जैनियों के प्रथम पत्र का जो उत्तर दिया है उस को ध्यान देकर प्रश्न के अक्षरों से मिलाइये ।

जैनियों के प्रथम पत्र के उत्तर में आर्य्यों का दूसरा पत्र

अपदं न प्रयुञ्जीत इति शब्दशास्त्रनियमात्, अपदत्वं च विभक्तिरहितत्वं सुप्तिङन्तं पदमिति शासनात् प्रथमप्रश्न इति लेखोऽपभाषणम् । यदि जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासः । अस्य च प्रमाणविषयकप्रश्नस्य जगद्वृत्तिपदार्थान्तर्गतत्वाज्ज्ञेयत्वसिद्धिरिति ज्ञातत्वादङ्गीकृतमेव प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् । अतश्च तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वे सिद्धे व्यर्थएव । तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः, तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्त शर्मणः

भाषानुवाद—व्याकरण शास्त्र का यह नियम है कि जिस में विभक्ति नहीं ऐसे अपद शब्द का प्रयोग न करे पद उस को कहते हैं जिस के अन्त में सुप् और तिङ् हो इस कारण प्रथम प्रश्न "यह शब्द व्याकरण से विरुद्ध होने से प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" के तुल्य लिखा गया है क्या इसी पाण्डित्य के आश्रय से जैनी लोग संस्कृत में शास्त्रार्थ करना चाहते थे ? । इस पर पं० मिहिरचन्द्र लिखते हैं "एक विसर्ग मात्र की अशुद्धि है" क्या व्याकरण में विसर्ग मात्र की अशुद्धि कम होती है ? । कोई पण्डित किसी विद्यार्थी से बोले कि हम तुम्हारी परीक्षा करें गे विद्यार्थी ने कहा—महाराज मेरी परीक्षा ली

आप करें होगे पर आप की परीक्षा परीच्छा शब्द से पहिले ही हो गई वही वृत्तान्त पं० मिहिरचन्द्र का हुआ कि जिन को विसर्ग, व्यवहार, विषय आदि शब्दों में यह भी नहीं मालूम कि इन में कौन वकार लिखना चाहिये इस से इन की भी परीक्षा हो गई और सब को ज्ञात हो जावे गी । क्या इसी पाण्डित्य के भरोसे अपने को अर्थशास्त्रज्ञ होने का दम्भ करते हैं (अस्तु) यदि जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों को प्रमेयत्व है तो क्या जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों में प्रमाण नहीं समझा जावे गा ? जब जगत् के सब पदार्थों में प्रमाण भी एक पदार्थ होने से पदार्थत्व सामान्य से प्रमाण भी प्रमेय रूप में आगया तो उस के भी प्रमेय हो जाने से प्रमाण रहा ही नहीं फिर उस का प्रश्न करना कभी ठीक नहीं है । जब प्रमाण को साध्य पक्ष में लेकर उस का निर्णय किया चाहते हो तो उस के निर्णय करने में जो कुछ प्रमाण कहो गे वह सब साध्य पक्ष में आजाने से प्रमेय हो जायगा क्योंकि तुम सर्व-साधारण पदार्थों को प्रमेय कह चुके हो तो तुह्मारा प्रमाण विषयक प्रश्न भी सब पदार्थों के अन्तर्गत होने से जानने योग्य है । इस से तुम्हारा प्रश्न जाना हुआ नहीं रहा अर्थात् तुम्हारे प्रश्न को यदि तुम सब पदार्थों में मानते हो तो विचारणीय पक्ष में आगया । यदि कहो कि हम को अपने प्रमाण विषयक प्रश्न में सन्देह नहीं तो अपने प्रश्न को प्रमाणरूप मान लेने से तुम ने प्रमाण को निश्चित समझ लिया फिर प्रमाण में सन्देह न रहने से प्रमाण विषयक प्रश्न नहीं बनता । यदि तुम को प्रश्न में भी सन्देह होता तो प्रश्न ही न कर सकते अर्थात् संसार में जो कुछ व्यवहार होता है वह सब प्रमाणपूर्वक है जब भोजन करते हैं तब भी नेत्रादि से निश्चय कर लेते हैं कि यह अन्न है इस से क्षुधा की निवृत्ति हो कर सुख होगा इस लिये भोजन करें यदि सन्देह हो कि यह हमारे भोजन योग्य अन्न है वा नहीं तो भोजन करना

भी न बने। मनुष्य जिस को नेत्रादि प्रमाणों से अपने सुख का साधन समझ लेता है उस को ग्रहण करता और जिस को दुःख का हेतु जानता है उस से सदा बचा करता है। इत्यादि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक होता है तो तुम्हारा प्रश्न भी प्रमाण पूर्वक होने से तुम ने प्रमाण को जान लिया फिर प्रमाण विषयक प्रश्न नहीं बन सकता। यद्यपि प्रश्न नहीं बनता तथापि उत्तर देते हैं कि पृथक् २ शास्त्रकारों की शैली के अनुसार प्रमाण के भेद दो, तीन, चार और आठ हैं। प्रमाण फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि है उस प्रमाण का निश्चय स्वतः उसी से और परतः अन्य से भी होता है॥

इस आर्य्यों के द्वितीय पत्र के उत्तर में

जैनियों का तीसरा पत्र

जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्। प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासैरिति भवद्भिरपरामर्शत्वेनोल्लेखोयं कृतः। कुतः प्रमाणस्य तु विषयीरूपत्वात् प्रमेयाणां विषयरूपत्वाच्च प्रमाणरूपत्वेन प्रमाणस्य न प्रमेयत्वं अन्यथा लक्षणस्यापि लक्ष्याक्रान्तत्वेन दूषणगणबाणप्रहारपातात् किञ्च प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वेसिद्धे व्यर्थएव। एतदप्ययुक्तं कुतः यदि अस्मत्स्वीकृतं मतं प्रमाणं तर्हि भवन्तोप्यङ्गीकुर्वन्तु नोचेत्समायातो विचारः सोपि प्रमाणाधीनः अतः प्रमाणविषयकः प्रश्नः सार्थिकः किञ्च तद्भेदाश्च यथा शास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा इदमप्यविशेषेण लेखनं कस्मिन्शास्त्रे इमे भेदाः केन प्रकारेण उद्दिष्टाः अपि च प्रमाणविषयोनोक्तः किं तर्हि अस्ति वा नवेति स्पष्टतयोल्लेखनीयं। प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः इत्यनेनापि प्राप्तः प्रमाणनिर्णयः तत्प्राभाण्यं स्वतः परतश्च इत्यनेनानैकांतको हेत्वाभासः निर्पेक्षतयोक्तत्वात्॥

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

ह० पंनालाल जैनमतानुयायिनः

भाषानुवाद—आप ने यह कहा कि जगत् में वर्त्तमान पदार्थों को साधारण रीति से प्रमेयत्व है तो प्रमाण भी सब में आगया इस से प्रमेय

हुआ तो प्रमाण विषयक प्रश्न प्रमेयान्तर्गत होने से साध्यसमहेत्वाभास हुआ यह आप का लिखना विना विचारे है क्योंकि प्रमाण विषयिरूप और प्रमेय विषयरूप हैं प्रमाणरूप से प्रमाण को प्रमेयत्व नहीं अन्यथा लक्षण को भी लक्ष्यत्व होने से अनेक दूषण आ जांय गे और यह भी आप का कहना अयुक्त है कि प्रमाण पूर्वक व्यवहार के करने से प्रमाण विषयक प्रश्न सर्वसाधारण प्रमेय होने से व्यर्थ है क्योंकि जो हमारे स्वीकृत मत को प्रमाण मानते हो तो अंगोकार करो जो नहीं मानते हो तो विचार करने का अवसर आया इस से प्रमाणविषयक हमारा प्रश्न सार्थक है और उस के भेद शास्त्र के अनुसार दो २ तीन ३ चार ४ वा आठ हैं यह लेख भी विशेषरहित संदेह रूप है क्योंकि यह नहीं लिखा कि किन शास्त्रों में यह भेद हैं और किस प्रकार से कहे हैं और प्रमाण विषय नहीं कहा वह है या नहीं स्पष्ट कहो और प्रमाण का फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि कहा सो इस आप के कथन से भी प्रमाण का निर्णय प्राप्त हुआ और उस का प्रामाण्य स्वतः परतः होता है इस आप की उक्ति को निरपेक्ष होने से अनैकान्तिक अर्थात् व्यभिचारी हेत्वाभास की नाईं स्वतः परतः की साधकता नहीं हो सकती।

विशेष—जैनियों के इस पत्र में कई अशुद्धियां हैं जैसे—१—हेत्वाभासरिति। २—विषयोरूपत्वात्। ३—लक्षाक्रान्तत्वेन। ४—सार्थिकः। ५—उद्दिष्टाः। ६—नैकान्तकः। ७—भवंतोऽप्यंगीकुर्वंतु। इन तीन शब्दों में तीन अशुद्धियां हैं। यदि कोई लिखने में अक्षर छूट जाता है तो उस से पण्डिताई में हानि नहीं समझी जाती सो ऐसी अशुद्धि यहां नहीं गिनाई हैं। इन उक्त अशुद्धियों के अनन्तर इन के पत्र में अन्य भी अशुद्धियां हैं जिन से जैन पण्डितों की पण्डिताई प्रकाशित हो जावेगी

इस के आगे जैनियों के द्वितीय पत्र के उत्तर में

आर्य्यों का तृतीय पत्र

सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वम प्रमाणपूर्वकत्वं वा। यदि प्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यापि सर्वव्यवहारान्तर्गतत्वात्संशयाभावेनानर्थकः प्रश्नः। यदि चाप्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यायोग्यत्वम्। यद्यस्मदुक्तपदार्थानां मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिन पदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्यतो भवदनुमतौ सर्वस्य साध्यत्वात् प्रामाणाभावेन प्रमेयाभावः।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्त शर्मणः

भाषानुवाद —सब व्यवहार प्रामाण पूर्वक होते हैं वा अप्रमाण पूर्वक ? अर्थात् शोच समझ के मनुष्य कार्य्य करने में प्रवृत्त होते हैं वा अन्धाधुन्ध उन्मत्त के समान। यदि कहो कि प्रमाण से व्यवहार होते हैं तो आप का प्रश्न भी सब व्यवहारों में होने से प्रमाण पूर्वक हुआ अर्थात् आपने अपने प्रश्न को प्रामाणिक माना तो तुम को प्रमाण का बोध हो गया अर्थात् प्रमाण का बोध था तब ही तुम प्रश्न कर सके तो प्रमाण में सन्देह न होने से तुह्मारा प्रमाणविषयक प्रश्न करना सर्वथा व्यर्थ हुआ। यदि कहो कि बिना प्रमाण के व्यवहार होते हैं तो तुम्हारा प्रश्न भी अप्रमाणिक होने से अयोग्य है। और यदि हमारे प्रथम पत्र में लिखे जिनजैनादि पदार्थों को तुम प्रमेय अर्थात् विचार पक्ष में लाने योग्य मानते हो तो जिन पद और उस के वाच्यार्थ के साध्य होने से तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारे मत का मूल साध्य हो गया किन्तु सिद्ध नहीं रहा इस से यह आया कि जब तुम को अपने जैन मत पर विश्वास नहीं यदि विश्वास होता तो उस को प्रामाणिक मानते जब प्रामाणिक मान लेते तो प्रमाणविषय में सन्देह न होने से प्रश्न क्यों करते जब तुम को अपने मत के प्रामाणिक होने का विश्वास नहीं तो अन्य मत पर कैसे विश्वास हो सकता है ?। इस लिये तुम्हारे मत में

सभी साध्य होने से प्रमाण कोई वस्तु न रहा क्यों कि प्रमाण वही कहाता है कि जिस से विषय का निश्चय और जिस विषय को उस प्रमाण से निश्चय करें वह प्रमेय कहाता है सो जब प्रमाण ही न रहा तो प्रमेय का ठहरना भी दुस्तर है।

यह पहिले दिन ता० १६ मार्च का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ सब अपने २ घर को चले गये। उसी दिन आर्य्यों को चिन्ता रही कि अब कलकब शास्त्रार्थ होगा उस का समय पहिले से नियत होना चाहिये परन्तु जैन लोगों को कुछ भी फिकिर नथी और पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों को तथा अन्य श्रोता जनों को बलाबल भी ज्ञात हो गया था इस से जैनियों की भीतरी इच्छा नहीं थी कि दूसरे दिन शास्त्रार्थ हो पर अपनी ओर से बन्द करने में भी प्रसिद्ध पराजय हुआ जाता था क्यों कि जैनियों के प्रतिपक्षी आठो प्रहर कटिबद्ध हो रहे थे इस कारण आर्य्यों की ओर से कई बार संदेशा जाने से जैनी लोगों को ता० १७ को शास्त्रार्थ स्वीकार करने पड़ा और ता० १७ को भी उसी समय से शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। पर ता० १६ को आर्य्यों ने जो तीसरा पत्र अन्त में दिया था उस का उत्तर जैनियों को देना था और जैनियों के तृतीय पत्र का उत्तर आर्य्यों को देना था आर्यों का पत्र जैन ले गये थे और जैनियों का पत्र आर्य्य ले गये थे और अपने २ घर विचार पूर्वक उत्तर लिख कर लाये जैनियों को उत्तर लिखने के लिये घर पर अन्यमतावलम्बी पं० लोगों की सहायता मिल गई जिस से अच्छे प्रकार लिखा।

द्वितीय दिन ता० १७ मार्च आर्य्यों के तृतीय पत्र के उत्तर में जैनियों का चौथा पत्र।

श्रीमद्भिः यदुक्तं सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्युक्तं। नायं नियमः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा

कस्मात् व्यवहाराणां वैलक्षण्यात् । प्रश्नस्यानर्थक्यन्तु वक्तुमसक्यं । येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यात् ॥ नास्माकं प्रमाणस्वरूपादौ संशयः । यूयं जानीथ नवेति पृच्छते । अस्मत्पृश्नविषयस्य सर्वशास्त्रसंमतत्वेन नायोग्यत्वं । अस्मन्मतविषये भवज्जिज्ञासितपदार्थानां यथा मेयत्वं तथा सर्वेषां पदार्थमात्राणां मेयत्वमस्माभिरंगीक्रियते परन्तु यन्मेयं तत्साध्यमिति न व्याप्तेरभावात् इत्यनेन यद्यस्मदुक्तपदार्थानाम्मेयत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं नतु सिद्धमित्युक्तं तदपि निर्मूलं ॥ अपि च मेयं च किं प्रमाणाधीनमिति प्रश्नावकाशः ॥ अंततो गत्वा भवद्भिरपि प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः इतिलेखरूद्भिः प्रमाणं त्वंगीकृतं परन्तु पृष्ठसविशेषप्रमाणस्वरूपादिकम् वक्तुमसमर्थाः इत्यस्माभिरवगतम् ।

ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

ह० पन्नालाल जैनधर्मिणः

भाषानुवाद—आप ने जो कहा कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक है या अप्रमाण पूर्वक यह आप का कहना अयोग्य है क्योंकि यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक ही होते हैं या अप्रमाण पूर्वक क्योंकि व्यवहार विलक्षण हैं अर्थात् कोई प्रमाण पूर्वक कोई अप्रमाण पूर्वक होते हैं और हमारे प्रश्न को तो अनर्थक आप नहीं कह सकते क्योंकि जिस व्यवहार को प्रमाण पूर्वकता है वह प्रमाण क्या? इस से हमारा प्रश्न सार्थक है और हम को तो प्रमाण के स्वरूपादि में संशय नहीं है पूछते इस लिये हैं कि आप भी उस को जानते हैं या नहीं हमारे प्रश्न का विषय सम्पूर्ण शास्त्रों को सम्मत इस से अयोग्य नहीं है हमारे मत के विषय में जिन पदार्थों के जानने की आप की इच्छा है वे जैसे प्रमेय हैं उसी रीति से हम सम्पूर्ण पदार्थों को प्रमेय मानते हैं परन्तु जो मेय है वह साध्य अवश्य होता है यह नहीं कह सक्ते क्योंकि व्याप्ति का अभाव है इसी लेख से आप ने कहा कि जो हमारे कहे हुए पदार्थों को तुम प्रमेय मानते हो तो जिन पद और उस का अर्थ भी साध्य हुआ

इस से तुम्हारे मत का मूल साध्य है सिद्ध नहीं यह आप का कहना भी निर्बल है और मेय किस प्रमाण के आधीन है इस से हमारे प्रश्न का अवकाश है और अन्त में आप ने भी प्रमाण के विना प्रमेय का अभाव होता है यह लिख कर उस प्रमेय की सिद्धि का कारण तो प्रमाण कूं माना परन्तु हमारे पूछे हुए प्रमाण के पृथक् २ स्वरूप आदि को आप कहने को समर्थ नहीं यह हमने जान लिया ।

विशेष—यह पत्र लिख कर लाये और जैनियों ने सभा के आरम्भ होते ही सब की सम्मति से सभा में सुनाया और कितनी ही बातें अपनी इच्छानुसार ऊपर से कहीं पीछे आर्य्यों की ओर से पं० देवदत्त शास्त्री जी ने भी अपना लिखा उत्तर सुनाया और कुछ उस पत्र के सम्बन्ध में कहा इस पर छेदालाल जैन ने फिर खड़े हो कर कहा इस पर भीमसेन शर्मा ने कहा । जैनियों को सभा के आरम्भ में कहने के लिये समय दिया गया इस पर तो जैनी प्रसन्न थे पर जब आर्य्य पण्डित बोल चुकें तब फिर भी पीछे बोलना चाहें तब आर्य्य पण्डितों ने कहा कि तुम जितनी बार बोलो गे—उतनी बार हम तुम्हारे पीछे अवश्य बोलें गे । अन्त में यह हुआ कि दूसरे दिन अन्त में आर्य्य पण्डितों ने उन के उत्तर दे कर जैन मत की पोल खोल ने का प्रारम्भ किया (जिस को प्रमाण प्रमेय का झगड़ा डाल के अपने मत की गोलमाल पोलपाल को दवाते थे कि हमारे मत पर विचार न चल ने पावे) तब तो जैनियों के मुख पर सफेदी आने लगी इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ को जैन पण्डितों ने इस विचार से बोल चाल अर्थात् लिखा पढ़ी न हो कर भाषा में बोलने में टाला था कि हमारे संस्कृत की अशुद्धियां सभा में प्रकट हो चुकीं फिर लिखेंगे तो और भी अशुद्धियां निकलने से विशेष धूर होगी इस लिये भाषा में बोल कर समय पूरा करें परन्तु आर्य्यों की इस में भी चढ़ बनी अर्थात् प्रमाण विषय में यथावत् वर्णन किये पीछे

जैन मत की अच्छे प्रकार सभा को पोल दिखाई। पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों ने अपने मत की हानि देख कर शास्त्रार्थ के स्वीकार कर्ता जैन पक्षी सेठ फूलचन्द जी को अनेक जैनों ने जा २ कर धमकाया और कहा कि तुम ने यह रोग हमारे और अपने पीछे क्यों लगा दिया? हमारा मत जैसा है वैसा मानते हैं इस प्रकार अनेक जैनियों ने फूलचन्द जी को लज्जित किया इस से सेठ फूलचन्द जी दूसरे ही दिन से बीमार होकर घर में पड़ रहे और दूसरे दिन से सभा में नहीं आये थे। इस बात का अनेक सज्जनों को पूरा अनुभव हो चुका है कि जैन लोग अपने मत की चर्चा से ऐसे डरते हैं कि जैसे कोई काल से डरे। इस से प्रकट है कि जैनियों के मत में अत्यन्त पोल है। इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में प्रथम जैनियों ने अपना पत्र सुनाया तत्पश्चात् आर्यों ने चौथा पत्र सुनाया।

आर्यों का चौथा पत्र जैनियों के तृतीय पत्र के उत्तर में

ओ३म्—तृतीयसङ्ख्याके पत्रे नवाशुद्धयः प्रतीयन्ते ताश्च शब्दशास्त्रबोधाभावेन जाता इति निश्चितमेव। इदञ्च तृतीयपत्रं पूर्वमेव दत्तोत्तरम्। पुनश्च तदुपरि लेखः पिष्टपेषणवत्प्रतिभाति। तथापीदं ब्रूमः। यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किंभवद्भिरंगीक्रियते?। यदिविषयिरूपत्वमूरीक्रियते तत्र युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्, इति पूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वात् भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिः। अस्मन्मते तु प्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति मत्वा न कश्चिद्दोष इति। इदानीं च प्रमाणविषयको विचारः समाप्त इति भवत्प्रश्नस्यावकाशाभावः।

अस्माभिश्चादौ यः प्रश्नः कृतोऽस्ति तस्योत्तरं भवद्भिः किमपि नो दत्तं तस्योपरि विचारः सर्वस्मात् पूर्वं कर्त्तुं युक्तस्तस्य प्रयोजनरूपेण निमित्तीभूतत्वात्। जैनमतमूलं सप्रमाणकमप्रमाणकं वेत्यादिविचारे प्रवृत्ते जैनमतसमीक्षणं प्रमाणेनैव भविष्यतीति प्रमेयरूपाज्जैनसम्प्रदायात्पूर्वं प्रमाणं

सेत्स्यत्येवेति। तत्रेदं विचार्यते—यदि जिनपदार्थः कश्चित्सनातनः सर्वज्ञो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो नित्यैश्वर्यसम्पन्नस्तर्हि तस्यैव सनातनसर्वनियन्त्री श्वरस्य सिद्धावनीश्वरवादो निरस्तः। यदि च कश्चित्कालविशेषोत्पन्नो जिनपदार्थाभिधेयस्तर्हि तस्याधुनिकस्यानित्यत्वात्सर्वज्ञत्वादिगुणासम्भवेन तदुपासनमश्रेयस्करमित्यादयो दोषाः।

ह० भीमसेन शर्मणः

ह० देवदत्तस्य

भाषानुवाद–तीसरे पत्र में नव अशुद्धि निश्चित हुई हैं सो जैनियों के तीसरे पत्र के नीचे दिखा चुके हैं। वे अशुद्धियां व्याकरण का बोध न होने से हैं यह निश्चित ही है। यद्यपि इस तृतीय पत्र में जो विषय है उस का उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं कि प्रमाण उस वस्तु का नाम है जिस से विषय को जाने यदि वह जानने योग्य विषय हो जाय गा तो उस को प्रमेय कहें गे प्रमाण नहीं कह सकते फिर प्रमाण का निश्चय करना चाहिये यह कथन नहीं बन सकता। क्योंकि जो स्वयं प्रकाश स्वरूप हो और अन्य पदार्थ उस के प्रकाश से देखे जावें वह प्रमाण कहाता है जैसे एक दीपक से अन्य पदार्थ देखे जाते हैं परन्तु उसी दीपक के देखने के लिये द्वितीय दीपक की अपेक्षा नहीं होती ऐसे ही प्रमाण वही है जिस को सिद्ध करने की अपेक्षा नहीं किन्तु वह स्वयं सिद्ध है। कहीं २ किसी प्रमाण का निश्चय करने पड़ता है तब उस को प्रमेय कहते हैं किन्तु वह प्रमाण कोटि में नहीं कहाता। जब कोई मनुष्य किसी विषय को विचारना वा देखना चाहता है तब वह पहिले अपने नेत्र को निश्चय नहीं करने बैठता कि मेरे के नेत्र हैं कैसे हैं मैं देख सकता हूं वा नहीं तथा न्यायाधीश जब न्यायालय में न्याय करने को उद्यत होता है तब वह यह नहीं विचारता कि जिस कानून से मैं न्याय करूं गा उसी को पहिले निश्चय करलूं कि वह कानून ठीक है वा नहीं किन्तु कानून के अनुसार न्याय करने लगता है ऐसे ही मत विषय

पर विचार होना चाहिये प्रमाण के निर्णय की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशय पूर्व ही प्रकाशित किया गया था। इस लिये इस पर बार २ लिखना पिसे को पीसना है तथापि यह कहते हैं कि—यदि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता तो जिनजैनादि पदार्थों को आपने विषयीरूप माना वा विषयरूप माना है इन दोनों में आप क्या ठीक समझते हो? । यदि कहो कि जिनजैनादि को विषयीरूप-प्रमाण मानते हैं तो ठीक नहीं क्योंकि आप पहिले लिख चुके हो कि तुम्हारे कहे जिनजैनादि पदार्थ प्रमेयरूप विषय हैं इस से पूर्वापर वद तो व्याघात हो जाय गा। यदि विषयरूप प्रमेय मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से तुम्हारे मत के मूल को तुमने ही अप्रमाण मान लिया इस से तुम्हारा पक्ष पराजय स्थान में पहुंच गया। हमारे मत में तो प्रमाण निश्चय स्वतः और परतः दोनों प्रकार होता है इस से कोई दोष नहीं आता। अब इस पूर्वोक्त सब कथन से प्रमाण विषयक विचार समाप्त हो गया क्योंकि तुमने पूछा था सो सब समझा दिया गया यदि इतने पर भी न समझो तो कुछ दिन विद्वानों की सेवा करो और पढ़ो तब प्रमाणविषय को पूछना। परन्तु तुमने जैन मत को ग्रहण किया तो उस को कुछ अच्छा समझ लिया होगा इस लिये हम को जो तुम्हारे जैन मत में शङ्का हैं उन प्रश्नों का उत्तर दीजिये। हमारे पहिले प्रश्न का उत्तर तुमने अब तक नहीं दिया और हम आप के प्रमाण विषयक उत्तर बराबर देते आते हैं। ऐसे कहां तक टालोगे। हमारे किये प्रश्न पर सब से पहिले उत्तर होना चाहिये क्योंकि सब प्राणिमात्र तथा विशेष मनुष्यों का यही प्रयोजन है कि हम को सुख मिले और दुःखों से छूटें। किसी मनुष्य को पूछिये सभी कहें गे कि यदि कोई कल्याण का मार्ग ठीक २ समझा देवे तो सर्वोत्तम है क्योंकि सुख की प्राप्ति ही मुख्य प्रयोजन है। सुख की प्राप्ति अर्थात् मनुष्य का

कल्याणकारी कौन मत है यही हमारा प्रश्न है। इस का उत्तर अब तक जैनियों ने नहीं दिया। जैन मत पर जब परीक्षा चले गी कि जैन मत प्रमाणयुक्त वा अप्रमाण है इत्यादि विचार होने में जैन मत की समीक्षा प्रमाण से होगी तो प्रमेयरूप जैन सम्प्रदाय से प्रमाण पहिले स्वयमेव सिद्ध हो जाय गा इस लिये प्रथम जैनमत पर विचार होना चाहिये। उक्त जैनमत पर इस प्रकार विचार चलना चाहिये कि—यदि जिन पदार्थ कोई सनातन, सर्वज्ञ, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव और अविनाशी ऐश्वर्य वाला है तो वही सनातन सर्वनियन्ता ईश्वर सिद्ध हो जाय गा ऐसा होने से अनीश्वरवाद स्वयमेव कट जाय गा यदि कोई काल विशेष में सर्वज्ञ होने से उत्पन्न जिन पद का वाच्यार्थ होगा तो उस आधुनिक जिनके अनित्यत्वादि गुणों का आरम्भ है क्यों कि जो किसी समय विशेष में उत्पन्न होता है वह अपनी उत्पत्ति से पहिले होगये समाचारों को नहीं जान सकता ऐसा हो तब तो पिता के जन्म के समाचार को पुत्र भी प्रत्यक्ष कर लेवे सो असम्भव है इस लिये किसी समय विशेष में उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता फिर ऐसे अल्पज्ञ जिन की उपासना कदापि कल्याण कारिणी नहीं हो सकती इस लिये यह जैन संप्रदाय अनेक दोषों से ग्रस्त होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता। इस प्रकार द्वितीय दिन आर्यों ने अपना पत्र सुना कर जैनों को दिया और जैनियों ने पूर्वोक्त अपना पत्र सुना कर आर्यों को दिया तथा कुछ भाषा में अपने २ पक्ष की ओर से दोनों पक्ष के पण्डितों ने कहा पश्चात् द्वितीय दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। इस दिन भी शास्त्रार्थ होने बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य लोग कब मानते थे उन्हों ने ता० १७ को सन्ध्या से वार २ संदेशा भेज कर फिर जैनियों को खटखटाया कि कल ता० १८ को किस समय से शास्त्रार्थ होगा। और आर्यों की ओर पं० ठाकुर प्रसाद शास्त्री जी आगरे से

आगये थे इस पर कई लोगों का विचार ठहरा कि पं० ठाकुरप्रसाद जी आर्यों की ओर से बोले और विशेष कर श्रीमान् लाला सोहनलाल जी रईस फीरोजाबाद की इच्छा थी कि पं० ठाकुर प्रसाद जी भी बोलें तो ठीक हो अगले दिन ता० १८ को १ बजे से शास्त्रार्थ होना नियत हुआ सब लोग नियत समय पर सभा में पहुंचे । प्रथम पं० ठाकुरप्रसाद जी शास्त्री को नियत करने का विचार चला इस पर जैनियों ने बहुत वाद विवाद चलाया उन को इच्छा थी कि वादविवाद में समय कट जावे तो ऐसे ही फंद से छूटें वा आर्य्य लोग यह कह देवें गे कि पं० ठाकुरप्रसाद जी को न बोलने देओ गे तो हम शास्त्रार्थ नहीं करें गे तो भी हमारा कार्य सिद्ध हो जावे सो आर्यसमाजस्थ उन को कब छोड़ते थे । अन्त में अनेक वादविवाद एक घण्टा तक होने पश्चात् दो बजे शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ ।

आर्यों के चौथे पत्र के उत्तर में जैनियों का पांचवां पत्र

यच्च पूर्वपत्रेभवद्भिरुटङ्कितं न लिखितप्रश्नानामुत्तरन्तु जातं भूयपिष्टपेषणवद्भ्रमइति तन्न सम्यक् प्रमाणस्वरूपनिश्चितसङ्ख्ययोरभिमतप्रमाणलक्षणानां कस्मिंश्चिदपि पत्रे लेखनाभावान्नहि तुलामन्तरेण वस्तुपरिमाणमुपलभ्यते तत् प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेत्यशिरस्कवचनं ब्रुवाणैर्युष्माभिः क्रोडीकृतः प्रमाणविषयको विचारश्चरमवर्णध्वंसगत इति ॥ तदपि चित्रं खपुष्पमितिवत्प्रतीयमानत्वात् नहि किञ्चित्पदार्थापेक्षया स्वतः परतइत्यङ्कितं युष्माभिरतोविरहादतिसाहसमात्रमेतत्कथनमिति पश्यामः किं पुनर्बहुविडम्बनेन यच्च (यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वंविषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरंगीक्रियते यदि विषयिरूपत्वमुरीक्रियते तत्र युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् इतिपूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादि पदार्थानां साध्यत्वाद्भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिरिति) तदपिबालभाषितं आम्राणां प्रश्ने कोविदारमाचष्ट इतिवत् प्रमाणनिरूपणावसरे भिन्नजिनजैनादीनां विषयविषयित्ववर्णनात् नहि साध्यो विषयो भवितुं नार्हतीति

यत्र २ साध्यस्तत्र २ विषयो नेति व्याप्तेरभावात् किञ्च जिनमतं सप्रमाणमस्माकं परन्तु जिनमतप्रमाणमप्रमाणं वेति विकल्पे प्रमाणपदस्य कः पदार्थो येन जिनमतं युष्माभिः दृढं कारयिष्यामः नित्यत्वानित्यत्वादिकं च प्रमाणाधीनमिति भवद्भिः सविशेषप्रमाणादिः पूर्वं कथनीयः ॥

ह० पन्नालालजैनधर्मिणः
ह० छेदालाल जैनधर्मिणः

भाषानुवाद—जो पहिले पत्र में आप ने कहा कि आप के लिखे प्रश्नों का उत्तर दे चुके फिर पिष्टपेषण के समान कहैं सो आप का कहना ठीक नहीं प्रमाण का स्वरूप और निश्चित संख्या और शास्त्रकारों के माने हुए लक्षणों को किसी पत्र में भी आपने नहीं लिखा तुला के विना वस्तु का परिमाण नहीं जाना जाता और उस प्रमाण की प्रमाणता स्वतः परतः इस विना शिर के वचन को कहने वाले आपने स्वीकार किया कि प्रमाणविषयक विचार पूरा हुआ यह भी अत्यन्त आश्चर्य है क्योंकि यह कहना आकाश के फूलों के समान है काहे ते कि आपने यह नहीं कहा किस पदार्थ की अपेक्षा से स्वतः और किस की अपेक्षा से परतः इस युक्ति के विना इस आप के कथन को अतिसाहस पूर्वक समझते हैं बहुत बिडम्बना से क्या है और आपने यह कहा कि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चंचल नहीं तो जिनजैनादि पदार्थों को तुम विषयिरूप मानते हो कि विषयरूप। जो विषयिरूप मानते हो सो ठीक नहीं क्यों कि आप के कहे पदार्थों को प्रमेयरूप होने से इस पूर्व लेख के संग विरोध है और जो विषयरूप मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से अपने मत का मूल आपने ही अप्रमाण स्वीकार किया यह निग्रह स्थान की प्राप्ति है यह आप का कहना भी बालक अर्थात् अज्ञानी कासा है क्यों कि पूछे आम बताये अमरूद इस के समान प्रमाण निरूपण समय में जिनजैनादि का विषयविषयित्व वर्णन करते हो और यह नियम नहीं कि साध्य विषय न होसके क्योंकि

जहां २ साध्य वहां २ विषय नहीं यह व्याप्ति नहीं और हम को तो जैनमत प्रमाण सिद्ध है परन्तु जिनमत प्रमाण है या अप्रमाण है इस आप के विकल्प में प्रमाण पद का क्या अर्थ है जिस से आप को जिन मत की दूषितता करावें और नित्य अनित्य का ज्ञान भी प्रमाण के आधीन है इस से तुम पहिले प्रमाण के स्वरूपादि कहो ।

आर्यों का पाचवां पत्र जैनियों के चौथे पत्र के उत्तर में

जैनानां पूर्वपत्रे व्याकरणानुसारतो दिगशुद्धयः श्रीमद्भिः। सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वंवेत्ययुक्तमिति प्रतिज्ञातम्। एतद्वाक्यान्तर्गतमयुक्तमिति सिषाधयिषितम्। व्यवहाराणां वैलक्षण्यादिति हेतुना। अत्रायं प्रश्नः व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोः प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति वाक्य घटितायुक्तत्वरूपसाध्यस्य च क्व व्याप्तिरस्ति, किं पुरुषोऽयुक्तत्वरूपसाध्याभावविशिष्टविलक्षणव्यवहारे न प्रवर्त्तते दृश्यते च सर्वेषाम्पुरुषाणां निष्टङ्का सर्वत्र प्रवृत्तिस्तत्रायुक्तत्वरूपसाध्याभावेन व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोश्च सत्वेनायुक्तोयं हेतुः। निर्वच्छिन्नमूलधूमसत्ववन्हेरवश्यं भावनियमात् किञ्च व्याकरणशास्त्रोक्तदिशानेकशुद्धिग्रस्तत्वेन पूर्वापरविरोधसद्भावेन चात्यन्तउपेक्ष्यो भवतां लेखः। अशुद्धीनामनेकत्वात् ताश्च समयान्तरे प्रदर्शयिष्यामः। विरोधश्चायं येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यादिति वाक्ये तत् प्रमाणं किमिति वाक्येन प्रश्नः कृतः, लिख्यते चाग्रे नास्माकम्प्रमाणस्वरूपादौ संशयइति रात्रिन्दिववोरिवात्यन्तविरोधाक्रान्तत्वात्। अपि च सर्वे व्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृत्वैव प्रवर्त्तन्ते नायं नियमः। प्रमाणानि च शास्त्रज्ञानवतां प्रमाणत्वेनज्ञातानि शास्त्राज्ञानवताञ्च प्रमाणत्वेनाज्ञातान्यपि व्यवहाराप्रतिवन्धकानि भवन्तीति सम्मतम्। प्रमाणनिर्णयमनधिगम्यापि प्रवर्त्तन्ते च विद्वांसः प्राकृताश्च जना हट्टादिषु क्रयविक्रयव्यवहारे, भवद्भिरपिकातिप्रमाणानि कानि च तेषां लक्षणानीति निर्णयमकृत्वैव पत्रलेखनं कृतं ततश्च सिद्धमेतत् यद्वादिनोः सभायां मतप्रावल्यदौर्वल्याभ्यां जयपराजयौ निश्चीयेते। अथ तत्रैव वेदाग्रहः सभायामागत्य तद्विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्तामित्यलं भुत्सु ॥

ह० भीमसेनशर्मणः
ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—आपने यह प्रतिज्ञा की कि यह बात अयुक्त है कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक या अप्रमाण पूर्वक होते हैं इस में अयुक्त साध्य है और व्यवहारों में वैलक्षण्य हेतु है इस में यह प्रश्न है कि व्यवहार वैलक्षण्य हेतु की और अयुक्तत्वरूप साध्य की कहां व्याप्ति है क्या मनुष्य अयुक्तत्वरूप साध्य से विलक्षण व्यवहार नहीं प्रवृत्त होता सब मनुष्यों की सब जगह निःशंक प्रवृत्ति देखते हैं वहां अयुक्तत्वरूप साध्य नहीं और व्यवहार वैलक्षण्यरूप हेतु है इस से हेतु अयुक्त है, जहां पर्वत के मूल से आकाश तक धूम हो वहां वह्नि के अवश्य होने का नियम है और व्याकरण की रीति से अनेक अशुद्धि और पूर्वापर विरोध होने से आप का लेख अत्यन्त उपेक्षा करने योग्य है वे अशुद्धि कालान्तर में दिखावें गे और विरोध यह है कि जिस से व्यवहारों को प्रमाण पूर्वकत्व है वह प्रमाण क्या इस से प्रश्न सार्थक है इस में वह प्रमाण क्या इस वाक्य से प्रश्न किया और आगे जाकर लिखा कि हम को प्रमाण स्वरूपादि में संशय नहीं सो यह रात्रि दिन के समान अत्यन्तविरुद्ध है और यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय के विना किये ही प्रवृत्त हों और शास्त्रज्ञान वालों को प्रमाण रूप से नहीं जाने हुए और शास्त्र के अज्ञानियों को प्रमाण रूप से नहीं जाने हुए भी प्रमाण व्यवहार के प्रतिबन्धक नहीं होते यह सम्मत है और प्रमाणनिर्णय के विना किये भी विद्वान् और हट्ट आदि के लेने देने में प्राकृत जन प्रवृत्त होते हैं तुम ने भी कितने प्रमाण और उन के क्या लक्षण यह निर्णय किये विना ही पत्र लिखा इस से यह बात सिद्ध हुई कि वादियों के मत की प्रबलता और दुर्वलता से ही जयपराजय का निश्चय होता है जो उसी प्रमाण निर्णय में आग्रह है तो सभा में आन कर उस विषयक प्रश्न करो विद्वानों में इतना बहुत है।

विशेष—यह उक्त पत्र सभा में सुनाया गया और जैन मत पर कुछ विशेष कहा गया तब पं० छेदालाल जैनी ने श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी कृत सत्यार्थप्रकाश को ले कर कोई २ दोष दिखाये और कहा कि हमारे मत विषय में सब मिथ्या लिखा है सर्वदर्शनसंग्रह के पुस्तक में से कुछ दिखाया कि यह जैन मत नहीं है इत्यादि कहा उस का यथोचित उत्तर दिया गया। जो २ बार्त्ता विना लिखी हुई है उन सब को यथावत् कोई नहीं कह सकता इस लिये सब का लिखना उचित नहीं है। यदि एक वचन वा प्रमाण का स्मरण हुआ और उस के सम्बन्ध की सब युक्ति वा प्रमाण लिखे जावें तो बहुत लेख बढ़ जावे और ऐसा लेख करना उचित भी नहीं जान पड़ता है इस लिये विशेष बढ़ाना ठीक नहीं। इस दिन भी शास्त्रार्थ होने बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य्य लोग कब मानते थे) इस प्रकार अठारह तारीख को ४ बजे में ५ मिनट शेष रहे उस समय में शास्त्रार्थ का सारांश और जैन पण्डितों की कुटिलता पर और जैनमत की समीक्षा पर आर्य पण्डित कह रहे थे उस को सुन कर जैन बहुत लज्जित हुए और उच्चस्वर से कहने लगे कि समय हो गया इस पर श्रीमान् चतुर्वेदी राधामोहन जी और श्रीमान् राय सोहनलाल जी ने कहा कि अभी समय बाकी है हल्ला न करो श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापति जी ने सम्पूर्ण शास्त्रार्थ द्रष्टा और विशेष कर राय सोहनलाल जी की पूर्ण इच्छानुसार श्रीमान् पण्डित ठाकुरप्रसाद जी के व्याख्यान होने के लिये सभा से निवेदन किया इन जैन लोगों ने किसी की एक न सुनी और एक साथ सभा से उठ कर चल दिये। (इस से शहर के प्रतिष्ठित रईसों को भी इन की योग्यता अच्छे प्रकार प्रकट हो गई सभा में कोलाहल मचजाने से वहां व्याख्यान न हुआ तात्पर्य्य यह था कि इस दिन इन की पोल अच्छे प्रकार खोली गई कुछ शेष रही थी यदि बैठे

रहते तो सभी इन की पोपलीला प्रकट हो जाती) आर्य लोग भी अपने २ घर आये सर्वसम्मत्यनुसार श्रीमान् राय साहब सोहनलाल जी के स्थान पर ता० १८ को संन्ध्या के ७ बजे पं० ठाकुरप्रसाद जी शास्त्री का व्याख्यान जैनमत विषय पर ठहरा तदनुसार सब नगर में विज्ञापन दिये गये नियत समय व्याख्यान हुआ नगर के सभ्यों को वड़ी प्रसन्नता हुई पं० जी ने न्याय आदि शास्त्रों से जैन मत की अच्छे प्रकार समीक्षा की सभा की समाप्ति में पं० सीताराम चतुर्वेदी मैनपुरी निवासी ने आर्य्यों की प्रशंसा कविताई में पढ़ी ।

ओम्

(दोहा)—सत्यासत्य विचारहित । भये विज्ञ एकत्र ॥
वाक्यामृत की वृष्टिकरि सन्तोषे जन तत्र ॥

कबित्त

ईश अवराधक शुभसत्यता प्रकाशक अवगुणादिनाशक सुशासक विज्ञान के
देशगतिसुधारैं वेदसम्मतप्रचारैं वाक्य उचित उचारैं नहि ग्राहक धनदान के
विद्यानुरागी असत्य मत त्यागी ऐसे वड़भागी हितचिन्तक प्रजान के
सीताराम पुलकितह्वै पुनि२ धन्यवाद देत कहां लगि गाऊं गुण आर्य्यमहान् के

आप का शुभचिन्तक
सीताराम चतुर्वेदी
मैनपुरी

और उसी दिन अनेक आर्य लोगों ने नगर में जहां तहां व्याख्यान देना प्रारम्भ किया इस व्याख्यान के पश्चात् आर्य लोगों को फिर वही चिन्ता लगी कि ता० १६ को कब से शास्त्रार्थ होगा । इस लिये एक पत्र सेठ फूलचन्द जी के नाम भेजाय

ओ३म्

सेठ फूलचन्द जी योग्य—आप कृपा करके बहुत शीघ्र उत्तर दीजिये कि कल शास्त्रार्थ का आरम्भ किस समय से होगा। यदि प्रभात समय शास्त्रार्थ का निश्चय होने में बड़ी हानि होती है इस से अभी शास्त्रार्थ का समय निश्चय करके सूचित कीजिये॥ १८—३—८८

द० गङ्गाराम

रात्रि के ८ बजे प्र० चैत्र सुदी ६ रवौ मन्त्री आर्य्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का उत्तर सेठ जी ने कुछ नहीं दिया और अनेक लोगों से जैनों की अन्तरङ्ग चर्चा सुनी गई कि अब जैन शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। तब ता० १९ को प्रातःकाल एक पत्र जैनियों के पास और भेजा गया कि—

ओ३म्

श्रीयुत लाला मंजूलाल, प्यारेलाल फूलचन्द जी जैन धर्मावलम्बियों को विदित हो कि हमारा आप का शास्त्रार्थ इसी समय आरम्भ हो जावे इस में क्षण भर भी विलम्ब नहीं होना चाहिये क्योंकि हमारे महाशय लोग बड़े २ कार्य को छोड़ कर बहुत दूर से केवल इसी कार्य के लिये आये हैं यदि आप कहें कि हमारे मेले में हानि होती है और समय थोड़ा है तो हम को पहिले ही विज्ञापन क्यों नहीं दिया कि हम मेले के दिनों में शास्त्रार्थ न करें गे यदि आप को किसी विषय में प्रश्न करना हो तो सभा में ही आकर कीजिये यदि आप आज दश बजे से शास्त्रार्थ न करें गे तो आप का पराजय समझा जावे गा हम लोग अधिक प्रतीक्षा न करें गे इस पत्र का उत्तर तत्काल न देने से भी पूर्वोक्त व्यवस्था सिद्ध होगी।

आप का कृपाकांक्षी

१९ । ३ । ८८ ई० सोमवार

गङ्गाराम वर्मा
मन्त्री आर्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का भी कुछ उत्तर नहीं दिया और न पत्र लिया ता० १६ से पत्र लेना भी बन्द करदिया तब ता० १८ के संस्कृत के ५ वें पत्र का उत्तर संस्कृत में लिख कर भेजा गया सा भी नहीं लिया पीछे समाज के दो चार आदमी सज्जन लोग ले गये तब भी सेठ जी ने पत्र न लिया तब यह कहा गया कि आप पत्र नहीं लेते तो यह लिख दीजिये कि हम पत्र नहीं लेते सो यह भी नहीं लिखा तब आर्य लोगों ने शहर के दो चार लोगों को (जो आर्यसमाज में वा जैन मत में नहीं थे) कहा कि आप इस पत्र को सेठ जी के समीप ले जाइये । वे लोग ले गये तब भी पत्र नहीं लिया परन्तु आर्य लोगों ने उन को साक्षी कर लिया वह आर्य्यों ने भेजा छठा पत्र यह था कि—

जैनियों के पांचवें पत्र के उत्तर में आर्यों का छठा पत्र

पूर्वप्रहितभावत्कपत्रे केवलं प्रमाणस्वरूपभेदविषयाणां प्रश्नो जातः। इतश्च ते प्रदर्शिताः । अधुनाप्रतिभाति चैतद्यद्भावत्कैस्तेषां लक्षणानभिज्ञैर्भूयते । अतश्च तानि प्रकारान्तरेण देवानां प्रियावगमाय पुनः प्रतिपाद्यन्ते प्रत्यक्षानुमानशब्दाः प्रमाणानीति संख्याचतुष्टयविशिष्टं तार्किकसंमतं प्रमाणस्वरूपम् । वैशेषिकराद्धान्ते प्रत्यक्षं चानुमानंचेति प्रमाणद्वयम् । साङ्ख्ययोगयोश्च सिद्धान्तेप्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानीति प्रमाणत्रयम् । पूर्वमीमांसकमतानुसारिणस्तु प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावा अष्टौ प्रमाणानि मन्यन्ते । उत्तरमीमांसकास्तु व्यवहारदशायां ह्यष्टौ प्रमाणान्युररीकुर्वन्ति । लक्षणानि च प्रात्यक्षानुमानिक्यौपमानिकीशाब्दीप्रमाणां करणं तत्तत्प्रमाणम् । यथाचप्रात्यक्षप्रमायाः करणं प्रत्यक्षं प्रमाणमित्यादिधेपेलिमम् । अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं पारम्पर्यक्रमागतज्ञानकरणमैतिह्यम् । अर्थादापत्तिरर्थापत्तिः । यत्राभिधीयमानेर्थे योऽन्योऽर्थः प्रसज्यते साऽर्थापत्तिः । सम्भवो नामाविनाभाविनोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणम् । अभावो विरोध्यभूतं भूतस्येति । प्रदर्शितप्रमाणस्वरूपसंख्यालक्षणेषु सत्यां विप्रतिपत्तौ अर्द्धघटिकापरिमितसमयेन सप्रमाणं प्रदर्शनीया । तुलामन्तरेणेत्यारभ्य कथनीयेत्यन्तं पूर्वापरविरोधादनेकपराभूतिविशिष्टत्वात् सर्वथोपेक्ष्यः क्लिकुंलेखइत्यलमतिपल्लवितेन ।

ह० भीमसेनशर्मणः

ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद—आप के पहिले पत्रमें प्रमाण के स्वरूप, भेद और विषय का प्रश्न था इस से स्वरूपादि विषयों का उत्तर दिया गया । अब जान पड़ता है कि आप उन के लक्षण ज्ञान से सर्वथा शून्य हैं इस लिये वे प्रमाण स्वरूपादि प्रकारान्तर से तुम को बोध होने के लिये दिखाये जाते हैं प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान शब्द ये चार प्रमाण नैयायिक सम्मत हैं । वैशेषिक शास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान दो प्रमाण मानें हैं । साङ्ख्य और योगशास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान और आगम तीन प्रमाण माने हैं । पूर्व मीमांसा में चार न्यायवाले ऐतिह्य अर्थापत्ति सम्भव, और अभाव आठ प्राण माने हैं । उत्तर मीमांसा में भी व्यवहार दशा में उक्त आठ प्रमाण माने हैं । प्रमाणों के लक्षण—प्रत्यक्षादि बुद्धियों का तत्तद्विषय में यथावत् होना प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं इत्यादि प्रत्येक के लक्षण भी संस्कृत में लिखे हैं! यदि इन लिखित प्रमाण के स्वरूपादि में कुछ सन्देह रहे तो प्रमाणास हित आध घड़ी में उत्तर दीजिये आगे जो तुम्हारे पञ्चम पत्र में तुला-मन्तरेण० इत्यादि लेख है वह पूर्वापर विरुद्ध होने से अनेक प्रकार से तुम्हारा पराजय प्रकट करता है इस लिये उपेक्षणीय है इतिशम् । यह पत्र न लिया और जैनियों के ओर के प्रवन्ध कर्त्ताओं ने सभापति ज्वालाप्रसादजी से यह निश्चय किया कि अब शास्त्रार्थ करना वन्दकर दिया जावे और जैनियों की ओर से यह न मालूम हो कि जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते किन्तु उपद्रव के भय से प्रबन्धकर्त्ताओं ने शास्त्रार्थ होना वन्द कर दिया इस प्रकार का एक पत्र जैन प्रवन्ध कर्त्ताओं ने वना कर सभापति के हस्ताक्षर करा लिये पर आर्य्य प्रवन्ध कर्त्ताओं के पास लाये तो इन्हों ने हस्ताक्षर न किये और कहा कि जैनी लोग यदि शास्त्रार्थ करना चाहें तो जैनी और आर्य्यों की ओर से १० दश२ आदमी एक स्थान में दश २ हाथ पर बैठे रहें बीच में पुलिस बैठी रहे कोई किसी से बोले नहीं वा कोई प्रतिष्ठित रईस प्रश्न करे उस का

उत्तर अपनी २ विद्या वा मतानुसार दोनों पक्ष वाले उस रईस के प्रति देवें इत्यादि अनेक प्रकार निकल सकते हैं कि जिस से उपद्रव कदापि न होवे ! परन्तु जैनों ने किसी की न सुनी शास्त्रार्थ करने से सर्वथा हठ गये। इस के पश्चात् आर्य्य लोगों ने ता० २० को एक विज्ञापन शहर में दिया कि:—

ओ३म्

सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि किसी कारण से न करने शास्त्रार्थ जैन भाइयों के हमारे विद्वान् पुरुष स्वस्थान को आज पधारें गे इस से हम फिर भी १ घंटे का अवकाश जैनमतावलम्बियों को देते हैं कि शंका निवारण या शास्त्रार्थ करना चाहें तो आ कर करें बाद चले जाने विद्वानों के कहना उन का माननीय न होगा।

प्र० चैत्र शु० ८ भौम दिन—२०—३—८८ई०

गङ्गाराम वर्म्मा
मन्त्री आर्य्यसमाज
फीरोज़ाबाद

इस के पश्चात् सब लोग अपने२ नगरों को पधारे जो बाहर से आये थे।

इस प्रकार शास्त्रार्थ समाप्त हुआ॥

ओ३म् तत्सत्

जैनियों का प्रमाद

—❧✻☙—

विदित हो कि जो शास्त्रार्थ वेदमतानुयायी और जैनमतावलम्बियों से नगर फ़ीरोज़ाबाद में हुआ था उस का ठीक २ वृत्तान्त वोही महाशय कि जिन की शास्त्रार्थ समय उपस्थिति हुई थी जानते होंगे और होने का कारण भी उन्हीं महाशयों पर प्रगट है कि जो यहां के रहने वाले हैं ये दोनों बातें सत्य २ तभी सम्पूर्ण महाशयों पर विदित हो सकती हैं जब पक्षपात रहित द्रष्टा पुरुष लिखें या कहें शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद का सारांश जो मुंशी जगनकिशोर साहब ने छपवाया है वह बहुत ही सही यानी सत्य है जैसे मैंने अपनी अल्पबुद्धि से उस को सत्य समझा है ऐसे और भी महाशयों ने जो पक्षपात रहित होंगे समझा होगा क्योंकि सत्य के कारण से किन्तु जैनी महाशयों के शिर से अभी तक पक्षपात का भूत नहीं उतरा कहीं तो ऐसे गपोड़े हाकने लगे कि हम से आर्य्य हार गये और हमारे प्रश्न का कुछ उतर न दे सके इस से भी अधिक प्रत्येक जैन मिथ्याभाषण करने लगे इन की प्रपंच मय बार्ताओं को सुन आर्य पुरुषों ने बहुत सहन किया तो भी पराजय भूषण जैनी अपना पराजय छिद्र दबाने के लिये ठौर २ और भी अधिक मिथ्याभाषण करने लगे इस पर मंत्री आगरासमाज ने प्रसिद्धिपत्र इस आशय का दिया कि यदि अब भी जैनी कुछ पुरुषार्थ रखते हों तो हम सर्वत्र जैनियों को सूचित करते हैं कि एक हफ़्ते के अन्दर हम से फिर शास्त्रार्थ करें सज्जनो ! ध्यान की जगह है ग़ौर का मुक़ाम है ख्याल की बात है बुद्धि की परीक्षा है यदि ये ऐसे ही सभा जीत थे तो क्यों न शास्त्रार्थ किया इन की शास्त्रज्ञता तो भले प्रकार ३ दिवस के शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद ही में प्रगट हो गई थी कि पराजय दल ने ऐसा

दबाव डाला कि पत्र और विज्ञापनों से भी शास्त्रार्थ करने को समर्थ न हुए फिर ये किस बल से शास्त्रार्थ करते जैनमतावलम्बियों ने शास्त्रार्थ फ़ीरोज़ाबाद जो छपवाया है उस को शास्त्रार्थ द्रष्टा सज्जन लोग तो अवश्य २ ही सत् असत् को जान गये होंगे किन्तु मैं अपनी अल्पबुद्ध्यनुसार सर्व के ज्ञातार्थ प्रमाद से जो उन्हों ने विपर्य्यय छपवाया है उस को प्रगट करता हूं क्योंकि—

दोहा

अति संघर्षण करे जो कोई । अनल प्रगट चन्दन तें होई ॥

जैनियों का प्रमाद प्रमाद प्रमाद

प्रथम प्रमाद

श्री स्वामि भास्करानन्द जी के विषय में जो छपवाया है यह उन का अति ही प्रमाद है स्वामि भास्करानन्द यहां से जब पधारे तब पं० पन्नालाल का पत्र इस आशय का आगया कि मैं इस समय नहीं आ सकता मेरे पैर में फोड़ा है जब पन्नालाल ने फोड़े का मिस किया तब सेठ साहब ने चतुर्वेदी कमलापति साहब और उक्त स्वामि जी से यह कहा कि अब हमारा तुम्हारा शास्त्रार्थ मतविषय का मेले पर यानी ता० १५ मार्च सन् १८८८ ई० से अवश्य होगा इस को सर्व सज्जन भले प्रकार जानते हैं कि जब पन्नालाल न आये तो भी स्वामी भास्करानन्द जी ने १७ फरवरी को अपने व्याख्यान में यह कहा कि यदि अब भी कोई प्रतिष्ठित जैनी यह कहे कि हम कल या ता० १८ फ़र्वरी सन् १८८८ ई० को पं० पन्नालाल को अवश्य २ बुला लेंगे तो मैं कदापि बांकी पुर के शास्त्रार्थ में नहीं जाऊं गा चाहे मेरे पहुंचने के लिये वहां से तार आही गया है इस को किसी जैनी ने कल के लिये यानी ता० १८ फ़र्वरी को स्वीकृत नहीं किया और सेठ फूलचंद साहब ने यही कहा कि मेले पर हमारे पं०लोग अवश्य आवें गे सज्जनो जब सेठ

साहब ने किसी तरह से उस समय शास्त्रार्थ करना स्वीकृत न किया तब स्वामिभास्करानंद सरस्वती जी बांकीपुर को पधारे ।

२—प्रमाद

इन के पत्रों के उत्तर ठीक २ समय पर पहुंचते रहे यह लिखना भी प्रमाद से असत्य है वल्कि आर्य्य पुरुषों के दो पत्रों का तो जैनी महाशयों ने उत्तर भी नहीं दिया और जैनियों ने किसी पत्र का उत्तर भी ठीक २ भले प्रकार नहीं दिया कुछ का कुछ उत्तर देते रहे यह बात भी सर्ब सज्जनों को विदित है

३—प्रमाद

पंडित भीमसेन शर्मा जी और सेठ फूलचंद साहब में जो नियम नियत हो गये थे उन के सिवाय कुछ भी न्यूनाधिक नहीं हुए यह लिखना जैनियों का सर्वथा व्यर्थ है इन के लेख ही से इन का झूठ यानी मिथ्याभाषण सिद्ध होता है क्योंकि जब ये यह लिखते हैं कि न्यूनाधिक कर दिये थे सज्जनो ध्यान से देखिये कि यह इनकी कैसी प्रपंचयुक्त वार्त्ता है मानो जो न्यून हो गये थे उन को बढ़ा के और जो अधिक हो गये थे उन को दूर करके नियम क्यों न माने और यह लिखा है कि पं० भीमसेन शर्म्मा अपने धर्म से कह देवें येही नियम ठहरे थे यह लिखना और भी जो उक्त पं० जी के विषय में लिखा है बिलकुल असत्य ही है इस को सम्पूर्ण द्रष्टा शास्त्रार्थ सज्जन लोग भले प्रकार जानते हैं भो विद्वज्जनो इन का पूर्ण सिद्धान्त नियमों का न मानना ही इन के लेख से सिद्ध होता है जब अनियम कार्य करना ही जैनी महाशयों को प्रिय लगता है तो इन के बीच में शास्त्रज्ञता का गंध मेरी भी अल्पबुद्धि के अनुसार कोई विद्वान् नहीं कह सकता देखो नियम ही से सम्पूर्ण कार्य संसार के होते हैं अनियम से कोई भी नहीं होता है फिर अनियम कार्य कैसे हो सकता है जब जैनी पं० शास्त्रार्थ के साधारण नियमों का

होना मुख्य नहीं समझते तो शास्त्रार्थ करने को योग्यता इन में कोई विद्वज्जन कब अनुमान कर सकता है जब जैनियों की इच्छानुसार आर्य्य पुरुषों ने पंच और सिरपंच स्थान स्वीकार किया फिर किस प्रकार से आर्य पुरुषों का हठ इच्छानुसार नियम नियत होने का सिद्ध हो सकता है ? ॥

४—प्रमाद

मध्यस्थ के विषय में हम जैनियों का अत्यन्त ही प्रमाद प्रगट करते हैं कि जिन में शास्त्रार्थ और सभ्यता का व्यवहार किंचित् भी प्रगट नहीं जान पड़ता है आधुनिक आर्य और जैनयों के विद्वानों से भिन्न मतावलम्बी मध्यस्थ हो इस लेख से और भी अल्पज्ञता जैनी महाशयों की प्रगट होती है कि शास्त्रार्थ के प्रकार से होता है और उस के विशेष २ नियम सर्वोत्तम क्या है पं० भीमसेन शर्म्मा जी ने यह कदापि नहीं कहा कि हमारे सर्व विरोधी हैं और सत् असत् का निर्णय करने वाला कोई नहीं है ऐसा अनर्थरूप लेख लिखना जैनी महाशयों की ही योग्यता है क्या आज आर्य जैन मुसल्मान ईसाइयों के अनेक सम्प्रदाय हैं इन में एक महाशय से पूछा जाय या सर्व से पूछ के जो सिद्धान्त निश्चय किया जाय तो कौन श्रेष्ठ होगा देखो श्रीमती महारानी विक्टोरिया आज कमैटी यानी बहु सम्मति पर ही सर्व कार्य करती हैं ऐसे ही पं० भीमसेन शर्म्मा का यह कथन था कि हमारे तुम्हारे लेखों को देख कर सर्व जगत् और सर्व विद्वान् जयाजय जान सकते हैं ऐसे मध्यस्थ की कुछ इस शास्त्रार्थ में आवश्यकता नहीं है ऐसे मध्यस्थ की आवश्यकता जैनी महाशय समझते हैं तो मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार शास्त्रार्थ करना वृथा था उसी मध्यस्थ से ही पूछ लिया जाता कि किन का सिद्धांत ठीक और मत प्राचीन है विद्या हीन जैनियों का अपने दुराग्रह और अपना कपोल कल्पित जाल कटने के भय से यही आशय इन के लेख से सिद्ध होता है कि शास्त्रार्थ न हो जैनियों की मंदता

देखिये कि ये आधुनिक दयानंदमतावलम्बी लिखना क्या इन को लज्जा नहीं आती है यदि ऐसे ही पं० थे तो इन शब्दों को सभा में क्यों नहीं सिद्ध किया जब पं० भीमसेन शर्म्मा जी ने यह कहाथा के अगर तुम वेद को कपोलकल्पित आधुनिक आर्य और दयानंदमतीय सिद्ध करदो तो हमारा तुम्हारा इसी पर शास्त्रार्थ सही इस कहने पर इन के मुखबंद होगये कुछ उत्तर न दे सके प्रियवरो इन जैनी पं० को सिवाय मिथ्या-प्रलाप के कुछ विशेष नहीं आता सज्जनो! शास्त्रार्थ दो प्रकार से होता है एक तो मुखद्वारा दूसरा लेखद्वारा लिखित शास्त्रार्थ के जयाजय के ज्ञाता सर्व विद्वान् और सर्व जगत् होता है और मुखद्वारा के शास्त्रार्थ के द्रष्टा वे ही लोग होते हैं जो तत्काल उपस्थित हों मध्यस्थ प्रबन्ध-कर्ताओं का होना अवश्य चाहिये क्योंकि जिस से शास्त्रार्थ समय कोई पक्ष नियम विरुद्ध प्रतिकूल कार्य न करे।

५—प्रमाद

सज्जन पुरुषो इन का धर्म से ज्यों का त्यों इस पुस्तक के लिखने में प्रमाद और मिथ्याभाषण प्रगट करता हूं एक लघु बात यह है कि पं० पन्नालाल ने शास्त्रार्थ के पर्चों में अपना नाम अनुस्वार लगा कर कई पर्चों पर लिखा था इस को सर्व सज्जन शास्त्रार्थ द्रष्टा भले प्रकार जानते हैं यदि किसी महाशय को प्रतीत न हो तो मैं पं० पन्नालाल के लेखों को दृष्टिगोचर करा सकता हूं फिर ज्यों के त्यों धर्म पूर्वक लेख कोई भी जैनी और जैन पं० सिद्ध कर सकता है क्या मिथ्याभाषण को ही जैनी पंडितों ने धर्म समझ लिया है इन का इस विषय में सम्पूर्ण लेख मिथ्याभाषण और पक्षपात की अनेक व्याधियों से अभिग्रस्त है

६—प्रमाद

जैनी पंडितों को व्याकरण का पूर्ण बोध न होने से उन्हों ने अपने पर्चों में विशेष अशुद्धियां कीं और आर्य पं०ने अपने प्रत्येक पत्र में इन की

अशुद्धियों की गणना प्रगट की और सभा में पं० भीमसेन शर्म्मा जी ने यह भी कहा कि जैनी पं० यह कहैं कि ये अशुद्धियां हैं या पीछे शुद्ध बना लें तो इसी समय हम अशुद्धियों को जैनी पं० के सन्मुख व्याकरण शास्त्र से सिद्ध कर सकते हैं इस पर व्याकरण शून्य जैनी पं० ने कुछ उत्तर न दिया और शास्त्रार्थ जो छपवाया है उस में लिखते हैं कि आर्य्यों के पत्रों में भी अधिक अशुद्धियां हैं यह लिखना कैसा अज्ञानता से निर्मूल है जैनियों के सम्पूर्ण पत्रों को देख कर सर्व को इन का झूठ और भी अधिक प्रतीत होगा कि जैनी महाशयों ने पत्रों में तो कहीं अशुद्धियों की चर्चा भी नहीं लिखी और न इन के लेख से जो पत्रों में है यह सिद्ध हो कि कोई अशुद्धि है फिर अशुद्धियों के विषय में लिखना सर्वथा व्यर्थ ही है जैनी महाशयों के लेख से यह बात सर्व सज्जनों को विदित होजायगी कि अपनी अशुद्धियों को बना लेना और आर्य्यों के पत्रों में मिथ्या अशुद्धियां प्रगट करना इस एकही लघु बात से सिद्ध है जो मैं पं० पन्नालाल सा० के हस्ताक्षरों के विषय में पूर्व लिख चुका हूं और छठा पत्र तो जैनी महाशयों ने अपने अत्यन्त प्रमाद की प्रबलता से मन माना लिख दिया है सभा में तो इस पत्र को नहीं दिया और न आर्य्यसमाज में भी किसी के हस्तगत हो के भेजा यह बात इन की मिथ्या प्रपंच की नहीं है? जब यह नियम था कि एक २ पत्र दोनों पक्ष वाले एक दूसरे को दे दें फिर छठा पत्र किस प्रकार से जैनियों का अधिक आना कोई विद्वान् कब अनुमान प्रमाण कर सकता है?

७ प्रमाद

मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार जैनियों के प्रत्येक विषय के लेख को स्थूल बातों में ही प्रमाद प्रगट करता हूं जब इन के लेख से यह सिद्ध है कि हमारे और इन के परस्पर यह बात ठहरी थी कि संस्कृत के लेखानुसार भाषानुवाद करके सभा को सुना दिया करें गे सज्जनो !

ध्यान कीजिये इन लेखों के भाषानुवाद को कि यह संस्कृत का ही अनुवाद है ? उस पर भी यह अधिकता कि प्रमाद से परामर्श का पीछा तो पांच २ या छः २ पृष्ठ तक न छोड़ा कहीं की ईंट कहीं के रोड़े का उदाहरण पूरा दर्शाने लगे और अपने लेखों में विरोधाविरोध का भी ध्यान न रहा सज्जनो ! इन के संस्कृत लेखों पर अच्छे प्रकार ध्यान देना चाहिये कि परामर्श सत्यार्थप्रकाश और सर्वदर्शन संग्रहादि के पृष्ठ और पंक्तियों का लिखना इन के पत्रों के कौन से शब्द के अर्थ से प्रगट होता है यदि यही भाषानुवाद संस्कृत का हो तो अपने संपूर्ण ग्रन्थ और सप्तभंगी न्याय का जैनियों ने पूरा उलथा क्यों न लिख दिया प्रियवर जैनियों तुम्हारे इन झूठ मूठ के लड्डुओं के खाने से क्षुधा न दूर होगी कहीं सत् के सन्मुख असत् और आधुनिक जो जैनमत है वह ठहर सकता है शंकराचार्यादि आचार्यों की सहस्रों फटकारों के लजाये हुए जैन यानी बौद्ध मतावलम्बी हठ और दुराग्रह को अभी तक नहीं छोड़ते पक्षपात की पगड़ी को सिर पर और खींच२ के बांधते ही जाते हैं यह आधुनिक मत तुम्हारा पीछा तभी छोड़े गा जब सत् सनातन वेदधर्म का ग्रहण कर पक्षपात की पगड़ी को खूंटी पर रख सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् का शरण लोगे तभी तुम सच्चे तत्त्वज्ञानी होगे प्रियवर ! इस आधुनिक जैनमत के असत्य ज्ञान को कल्याण कारी समझ क्यों अपना जीवन व्यर्थ गमाते हो

८ प्रमाद

जैनियों का पं० ठाकुरप्रसाद जी के विषय में लिखना अति ही असत्य यानी मिथ्या भाषण है ऐसे असत्य लेखों के लिखने में जैन यानी बौद्ध-मतावलम्बियों को लज्जा भी नहीं आती यह न ध्यान दिया कि हमारे मिथ्या लेखों को शास्त्रार्थ द्रष्टा लोग देख कर कितना पश्चात्ताप करें गे और हम को झूठे का दादा ठहरावें गे जो पुरुष एक बात झूठ बोलता

है और उसके छिपाने के लिये १०० बात झूठ यानी असत्य भाषण करता है परन्तु असत्य के कारण से अन्त में असत्य ही रहता है इस को अच्छी तरह शास्त्रार्थ द्रष्टा लोग जानते हैं कि इन बातों में से एक भी बात शास्त्रार्थ के समय में जैनी पं० ने नहीं की यदि जैनी पं० यह कहें कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं हैं इस बात को सब सज्जन पुरुष जानते हैं कि पं० ठाकुरप्रसाद जी ने अपने व्याख्यानों में यह कहा था कि जो आर्य न होगा वह तो गैर आर्य होगा मैं सोने के पत्र पर रजिस्टरी करा सकता हूं कि मैं आर्य हूं सज्जनो! देखो यदि आर्य न होते तो आर्यसिद्धान्त के सभासद् क्यों होते बड़े पश्चात्ताप का विषय है कि जब समान संख्या दोनों पक्ष के पण्डितों की हैं तो भी पं० ठाकुरप्रसाद जी से क्यों न शास्त्रार्थ किया जब समान समय तक दोनों पक्षों को लिखने और कहने का अधिकार है फिर जैनी महाशयों को क्या भय था यह पं० ठाकुरप्रसाद जी का कथन इस बात पर अपने व्याख्यानों में सर्व के ज्ञातार्थ हुआ जब शास्त्रार्थ करके जैनी पं० पेच में पहुंचे तब बहुत पुरुषों ने यह कहा कि तुम्हारा बड़ा भारी अपवाद इस बात से हुआ जो तुमने पं० ठाकुरप्रसाद से शास्त्रार्थ करना स्वीकृत नहीं किया तब जैन पण्डितों ने उन पुरुषों को यह उत्तर दिया कि पं० ठाकुरप्रसाद आर्य नहीं हैं इस से हम ने उन से शास्त्रार्थ नहीं किया उन पुरुषों ने आकर समाज में कहा जैनियों का सम्पूर्ण लेख इस विषय का अनेक मिथ्या भाषण की व्याधियों से अभिग्रस्त है और जैन यानी बौद्धमतावलम्बियों ने असत्य भाषण ही अपना धर्म समझ रक्खा है इन के धर्म ग्रन्थों का भी यही आशय है कि जैसे कोई वस्तु है और नहीं है और कह भी नहीं सकते कि है या नहीं ऐसे ही असत्य ग्रन्थों के संस्कार प्रवल होने से जैनी महाशयों को मिथ्या भाषण और हठ करने का असाध्य रोग हो होगया है इन के ग्रन्थों में ऐसा असत्यभाषण लिखा है कि विद्वानों को

अत्यन्त ही पश्चात्ताप इन के विद्याहीन आचार्यों पर आता है कि कोई प्रमाण किसी वस्तु का अनुमान करके नहीं लिखा जो मन में आया अप्रमाण लिख मारा जैसे ४८ कोस का जूंआ और ८ कोस का बिच्छू १६ कोस का कलसा ४० अक्षरों में एक एक पुरुष का आयु जो सहस्रों वर्षों का एक वर्ष ऐसे ही अनेक मिथ्याभाषण इन के ग्रन्थों में हैं कि जिन को देख कर बुद्धिमानों को अति ही ग्लानि इस आधुनिक मत से होती है।

९—प्रमाद

जैनियों ने जो चतुर्वेदी कमलापति जी के विषय में लिखा है वह सर्वप्रकार असत्य ही है इस को समस्त शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुष अच्छे प्रकार जानते हैं कि सभापति जी का कदापि यह कहना नहीं था कि हमारा जयपराजय पं० ठाकुरप्रसाद जी ही पर है पं० ठाकुरप्रसाद जी के व्याख्यानार्थ कहा था कि पांच मिनट शास्त्रार्थ समय में ही से चाहे आर्य पंडितों के ही समय में से ले कर दिया जाय क्योंकि सम्पूर्ण शास्त्रार्थद्रष्टा पुरुषों की आकांक्षा उक्त पं० जी के व्याख्यान सुनने की है इस को सुन कर पराजय मूर्त्ति जैनी बहुत घबराये क्योंकि अन्तिम समय ३० मिनट आर्य्य पण्डितों ही का था कि जिस में इन की सारी पोलें इन्हीं के ग्रन्थों से सुनायीं थीं कि जिस से बहुत लज्जित हुए और यों कह कर कि हमारी तौहीन होती है सभा से भाग गये फिर पत्र और विज्ञापनों के देने से भी शास्त्रार्थ करने को उपस्थित न हुए सज्जनो ! इस में किस का पराजय विदित होता है।

१०—प्रमाद

महाशयो ! जैनी पंडितों के प्रमाद की प्रबलता और मिथ्याभाषण का मकरजाल देखिये गा कि पं० छेदालाल के लेख से विदित है कि मैंने पं० भीमसेन से यह कहा कि यह श्लोक हस्ताक्षर करके हम को दे दो क्योंकि इस से हमारे मत पर मिथ्या आक्षेप किया है बड़े पश्चात्ताप का समय है कि आज दीर्घ यानी बहुत समय सत्यार्थप्रकाश को बने हो गया है किसी पं० जैनी ने मिथ्या आक्षेप का स्वामी जी महाराज पर दावा न किया क्या पं० छेदालाल साहब उत्तरायण और दक्षिणायन ध्रुव की यात्रा को चले गये थे जो अब गाढ़ निद्रा से जगे और

एक श्लोक पर नाक उठा कर देखने और कहने लगे प्यारे जैनियो तुम्हारे आधुनिक मत का तो खण्डन श्री १०८ स्वामि दयानन्दसरस्वती जी ने अपने सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास में खूब प्रगट कर दिखाया यदि ये पोलें जो उक्त समुल्लास में लिखी हैं सत्य नहीं हैं तो दावा तोहीन का क्यों न किया क्या सर्वत्र जैनियों को मोतियाविन्द का रोग हो गया था कि जिस से आज तक न सूझा और बेठिकाने की बेसुरी दो चार बातों को कह कर इन भोले भाले जैनी महाशयों को क्यों ठगते हो और अपने को पंडितों की गणना में कहते हो क्यों इस पं० शब्द को भी अपने नाम में लगा कर लज्जित करते हो अजी लाला जी आप अपने यथा नाम तथा गुण ही पर सन्तोष करो दुराग्रह और मिथ्याभाषण के व्यवहार को छोड़ो सदैव सत्यसनातन बातों को ग्रहण करो कि जिस से व्यवहार और परमार्थ सिद्ध होना चारित्र कहाता है अर्थात् जिन मत से भिन्न आचार्य सब सर्वथा अवद्य (निन्दनीय) और उन के निन्दित मतों का त्यागना चारित्र कहाता है। और जिनोक्त तत्वों में रुचि वाली वाणी प्रिय पथ्य और तथ्य कहाती है यह वाणी चारित्र से सम्बन्ध रखती है। यही बात इन के सूत्रों से भी सिद्ध होती है कि जिन भिन्न कुगुरु का संग करने से विषीले सर्प का काटना भला है। क्या ही आश्चर्य है कि पं० छेदालाल जी ने ऐसे२ सूत्रों को छिपा कर और पूर्वापर अपने मत का विचार न करके केवल वितण्डा किया है। स्वामी जी महाराज ने अवद्य शब्द का अर्थ सब प्रकार निन्दनीय किया है सो जैनमत को पूर्वापर देख के किया है इस से बहुत ठीक है यदि स्वामी जी अनवद्यं पाठ समझते तो उस का अर्थ भी वैसा ही करते जब पाठ अनवद्य लिखा और अर्थ अवद्य का किया तो निश्चय है कि यह भूल लेखक की वा छापे की है। क्योंकि इसी पुस्तक में (यान्यनवद्यानि कर्माणि) यहां अनवद्य का अर्थ अनिन्दनीय किया है इस से स्पष्ट हुआ कि चारित्र प्रकरण में अवद्य ही पाठ है जैसे जैनियों की प्रियतथ्य वाणी के विषय में जैन देवगुरुतत्त्व ज्ञान उपदेशक में लिखा है कि :—

कर्त्ताऽस्ति नित्यो जगतः स चैकः स सर्वगः सन् स्ववशः स सत्यः।
इमाः कुहेवाः कुविडम्बनाः स्युर्मन्ता न तासामनुशासकस्त्वम् ॥

इस जगत् का कर्त्ता नित्यव्यापक अपने सामर्थ्य में आच्छादन करने वाला वह सत्य है यह कुविडम्बना (नीचबुद्धि) त्यागने योग्य हैं उन का मानने वा कहने वाला तू (जैनी) नहीं है। अर्थात् नितय-व्यापक जगत्कर्त्ता ईश्वर को मानना जैनों का काम नहीं।

जैन पण्डितो की द्वितीय शङ्का यह है कि स्वामी (दयानन्दसरस्वती) जी ने जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि "लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्। जिस से लक्ष्य जाना जाय उस को लक्षण कहते हैं जैसे आंख से रूप जाना जाता है" सो ठीक नहीं क्योंकि लक्षण का स्वरूप नेत्र को नहीं कह सकते। इस का उत्तर यह है कि नैयायिकी परि पाटी यह है कि :—

अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवदोषाग्रस्तत्वे सति लक्ष्यस्वरूपबोधकत्वं लक्षणत्वम्।

जिस में अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव दोष न हो और लक्ष्य पदार्थ का स्वरूप जताने वाला हो उस को लक्षण कहते हैं। यहां जैसे नेत्र से रूप का बोध होता है इस में नेत्ररूप लक्षण में अव्याप्ति दोष इस लिये नहीं कि नेत्र रूप के साथ व्याप्त है अतिव्यापित इस लिये नहीं कि नेत्र से रूप भिन्न लक्ष्य मात्र का बोध नहीं होता। नेत्र से रूप का ग्रहण असम्भव भी नहीं और लक्ष्यरूप का बोध नेत्र से होता है। इस कारण रूप का लक्षण नेत्र को कहना असङ्गत नहीं है। लक्षण के समान्य स्वरूप में शब्द वाक्य सूत्र आदि लक्षण कहे जाते हैं। जैसे प्रमाण शब्द का व्याकरणानुसार यही अर्थ है कि जिस से प्रमेय को जानें निश्चय करें वैसे लक्ष धातु के दर्शन (ज्ञान) अर्थ से गन्धादि विषय ज्ञान के साधन होने से ज्ञानेन्द्रिय लक्षण हो सकते हैं इस में कोई बाधा नहीं। इस को न समझ के लिखा है तीसरे दिन के शास्त्रार्थ में पं० छेदालाल जैनी ने सत्यार्थप्रकाश पर तीन शङ्का बलपूर्वक की थीं। यद्यपि दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में आर्यों के पण्डितों ने कह दिया था श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी में हमारे मत के प्रवर्त्तक नहीं हैं किन्तु हमारा सनातन वैदिक मत है स्वामी जी के लेख पर जो कोई आक्षेप होगा वह वैदिक मत पर नहीं समझा जावे गा किन्तु स्वामी जी भी एक आप्त सनातन धर्मोपदेशक थे इस लिये हम लोग उन को वेदोक्त धर्मोपदेशक मानते हैं तुम लोग आर्यों के मत पर जो शंका करना चाहो

वेद पर करना इस पर जैनियों ने कुछ न ध्यान दिया और इस विचार से सोकि वेद पर कहने का कुछ सामर्थ्य नहीं तथा स्वा० द० जी के सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करें जिस से अन्य आर्य (हिन्दु) लोग भी आर्यसमाज से तथा सत्यार्थप्रकाशादि से घृणा करें गे और हमारी प्रशंसा करें गे तथा बहुत जैन लोग भी सत्यार्थप्रकाशादि से जैन मत के गपोड़े देख २ आर्यसमाजस्थ हो गये हैं सो जो हम सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करें गे तो जैनी लोग सत्यार्थप्रकाश को देखने से घृणा करें गे और हमारी प्रशंसा होगी कि हमारे पं० ने सत्यार्थप्रकाश का खण्डन कर दिया। इन तीनों शंकाओं का उत्तर भी उसी दिन की सभा में यथोचित दे दिया गया था तथापि जैनियों ने अपनी शंका और बढ़ा कर छपवाई कि जितना तत्काल नहीं कहा था और हमारी ओर से जो२ कहा गया था सो कुछ नहीं छपाया यह पक्षपात नहीं तो क्या है ?।

उचित तो यही था कि शास्त्रार्थ में जो लेखबद्ध विषय हुआ था उतना ही शास्त्रार्थ के नाम से छपाते और विशेष छपाना होता सो अलग पीछे से छपा देते। पर यह काम धर्मात्माओं का है। सब का नहीं। अब सुनिये—सत्यार्थप्रकाश सम्बन्धी तीन शंकाओं में पहिली यह है कि "पृष्ठ ४२६ पं०—३ सर्वथानवद्य योगानां" इस में स्वामी जी ने अवद्य को अनवद्य लिखा है इस पर पं० छेदालाल तथा अन्य जैनियों ने बड़ा कोलाहल मचाया है कि स्वामी जी ने अज्ञान से वा कपट से शंका कोटि से उठा के तोतातिती को सिद्धान्त कोटि में रख दिया है। इस पर विचार यह है कि वास्तव में (सर्वथावद्ययोगानां) ऐसा ही पाठ ठीक है क्योंकि (वदितुमयोग्यमवद्यम्) (अवद्यपण्य०) इस सूत्र से पूर्वोक्त अर्थ सिद्ध होता है जो कहने योग्य नहीं हो उस को अवद्य कहते हैं तो उक्त श्लोक का अर्थ यह होगा कि (जो कहने योग्य न हो उस का त्यागचारित्र कहाता है वह अहिंसादि भेद से पांच प्रकार का है अब प्रश्न यह है कि अवद्य नाम अयोग्य का क्या अर्थ हुआ तो जैन मत के सब पुस्तकों अर्थात् मुख्य सिद्धान्तों से यही निश्चित है कि जिन मत से भिन्न तत्वों का अनुसन्धान करना और जिन मत से भिन्न आचार्य सब कुगुरु हैं उन का त्याग यह विद्वान् का दोष नहीं

है किन्तु समझने वाले का दोष है पाठ का यह काम है कि जब उन को समझ में न आवे तो दूसरे स्थलों में देखते हैं जैसे स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ६६ में (लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः) इस का अर्थ बहुत सरल किया है कि जैसे गन्धवती पृथिवी। जो गन्ध वाली है वह पृथिवी है अर्थात् गन्ध पृथिवी का लक्षण है॥

जैनियों का तृतीय उपलम्भ यह है कि तौतातितियों के पूर्व पक्ष को लेकर स्वामी जी ने जैन मत का खण्डन किया है सो ठीक नहीं क्योंकि वह जैन मत नहीं।

सर्वज्ञो वीतरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथा स्थितार्थवादी च देवोऽर्हन्परमेश्वरः॥
सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं यो वानुमापयेत्॥

इन दोनों वचनों को स्वामी जी ने जैन मत के वर्णन में लिखा है। इन में से पहिला श्लोक छेदालाल जैन ने शास्त्रार्थ में पढ़ा था और कहा कि हम सर्वज्ञ ईश्वर को मानते हैं और द्वितीय श्लोक तौतातिती नास्तिक शिरोमणि का है। इस को छेदालाल ने अपना प्रतिपक्षी कहा है। सो यह ठीक नहीं क्योंकि तौतातिती यद्यपि किसी अंश में अर्हन्त देव का भी खण्डन करता है इसी लिये माधवाचार्य्य ने सर्वदर्शनसंग्रहस्थ जैन मत में तौतातिती को पूर्व पक्ष में लिया है परन्तु मुख्य कर तौतातिती वैदिक मतानुयायियों का प्रतिपक्षी है अर्थात् नित्य सर्वज्ञ ईश्वर को वेद मतानुयायी लोग मानते हैं उसी का (न चागमविधिः कश्चिन्नित्य सर्वज्ञबोधकः) इत्यादि वचनों से खण्डन किया है जैनी लोग जिस अर्हन्देव को सर्वज्ञ मानते हैं उस को वे नित्य नहीं कह सकते क्योंकि उन का मुख्य सिद्धान्त यही है कि अनादि सिद्ध सनातन ईश्वर कोई नहीं किन्तु अर्हन्देव वा आदिदेव जब उत्पन्न हुए तब सम्यग्ज्ञानादि से सिद्ध हो गये उन्हीं को सर्वज्ञ ईश्वर मानते हैं सो बीच में उत्पन्न होने वाला सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता क्योंकि उस की उत्पत्ति से पहिले अपने पिता पितामहादि का हाल नहीं जान सकता और सिद्ध होने पहिले बाल्यावस्था का अपना ही चरित्र नहीं जान सकता और सर्वज्ञ उसी को कह सकते हैं जो

अतीतानागत वर्त्तमान सब समय में एक रस कूटस्थ व्याप्त हो के सब को जाने सो ऐसा ईश्वर आर्य्यों का मन्तव्य है जैनादि का नहीं लोगों को बहकाने के लिये जैसे ईसाई लोग ईश्वर का अनेक प्रकार वर्णन करते २ अन्त में ईसामसीह पर तान तोड़ते हैं ऐसी ही कुछ चाल जैनियों की है मानते तो एक बीच के उत्पन्न हुए शरीरधारी को हैं उस के विशेषण सर्वज्ञादि हों। यह असम्भव है इसी लिये तौतातिती ने बीच से हुए भी किसी को ईश्वर नहीं माना इस से वह नास्तिक-शिरोमणि और जैनियों का बड़ा भ्राता है अर्थात् अनादि सिद्ध सनातन सृष्टि कर्त्ता ईश्वर के न मानने में जैनी और तौतातिती दोनों एक ही हैं इसी अभिप्राय से स्वामी जी ने दोनों को साथ ही लिखा है इस से जैनों का आक्षेप ठीक नहीं है॥

११ प्रमाद

सज्जनो इन जैनियों के मिथ्याभाषण की अधिकता देखिये गा कि जिस के लिखने से ये प्रमाद की गठरी ही जचते हैं जैनी पं० लिखते हैं कि आर्यों की असमर्थता तो पहले से ही शास्त्रार्थ विषय में थी आज शास्त्रार्थ के प्रारंभ समय से तो ज्ञात ही हो गयी कि पं० देवदत्त जी की जगह पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्रार्थ करें गे न्यायशील सज्जनो इस को क्या असमर्थता का कारण कोई विद्वान् अनुमान प्रमाण से समझ सकता है देखिये जब कोई पुरुष किसी विशेष कारण या रोगादि या समान संख्या की गणना से किसी कार्य को न करे तो क्या असमर्थ समझा जाय गा कदापि नहीं ख्याल कीजिये जब समान संख्या दोनों पक्ष के पण्डितों की है और समान ही समय तक उभय पक्ष को कहने का अधिकार है फिर इस से तो असमर्थता आर्यों की कोई न्यायशील नहीं कह सकता यदि जैनियों की असमर्थता नहीं थी तो आर्यों के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया और मतविषयक शास्त्रार्थ क्यों न किया इस से जैनी महाशयो तुम्हारा पराजय तो सर्व जगत् तथा सर्व विद्वानों को तुम्हारे लेख ही से विदित हो गया कि न तो साधारण नियम जो शास्त्रार्थ समय अवश्य माननीय हैं उन को और न मतविषयक शास्त्रार्थ करना अब तुम्हारे इन असंगत लेखों को कोई विद्वान् प्रमाण न करे गा।

१२ प्रमाद

शास्त्रार्थ बन्द होने में जैनियों की असमर्थता ही प्रगट होती है यदि ये असमर्थ न होते तो क्या पत्र और विज्ञापनों से शास्त्रार्थ न करते और उपद्रव का मिस करके शास्त्रार्थ बन्द करना यह जैनियों की कादरता नहीं है ? यह इन के लेख ही से विदित है कि धन्य है ऐसे न्याय मार्गी सभापति को कि जिन्हों ने दोनों पक्ष को समदृष्टि से देखा और न्याय मार्ग पर आरूढ़ हो कर न्याय किया जब सर्वोत्तम न्याय-कर्त्ता श्रीमान् चतुर्वेदी ज्वाला प्रसाद जी और प्रबन्धकर्त्ताओं को कहा और प्रबन्ध की उत्तमता यहां तक लिखी कि नियत प्रबन्ध से इधर उधर न चलने दिया बड़े पश्चात्ताप का समय है इन जैनी महाशयों की बुद्धि पर कि ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के न्याय में भी उपद्रव होने को दोष आरोपण करने लगे तो जो प्रबन्धकर्त्ता अपने न्याय से किसी पक्ष को इधर उधर नहीं चलने देते थे फिर ऐसे न्यायशील प्रबन्धकर्त्ताओं के सन्मुख अन्याय और उपद्रव का होना किस प्रकार से सम्भावित है इस से जैनियों की पूर्ण असमर्थता सिद्ध होती है और प्रमाद की प्रबलता देखिये गा कि श्रीयुत चतुर्वेदी राधामोहनादि और भी प्रतिष्ठित रईसों ने उपद्रव होता जान शास्त्रार्थ होना बन्द किया इन असंगत लेखों के लिखने में जैनी महाशयों को लज्जा नहीं आती जब यह ठीक यानी सत्य ही था तो सर्व प्रकार रईसों के हस्ताक्षर क्यों न करा लिये जो पत्र शास्त्रार्थ बन्द होने के विषय में छापा है वह तो जैनी महाशयों के लेखही से अप्रमाण सिद्ध होता है जब पत्र पांच की राय से और हस्ताक्षर केवल सभापति ही के हैं कब सम्पूर्ण प्रबन्धकर्त्ताओं का माना जा सकता है जबतक दोनों पक्ष के प्रबन्धकर्त्ता अपनी राय पर हस्ताक्षर न करें कब समस्त प्रबन्धकर्त्ताओं की ओर से माननीय हो सकता है यदि यह लेख सभापति जी ने प्रबन्धकरने की अपने में असमर्थता देख दिया तो पांच की राय प्रगट करना उचित न था केवल अपनी राय प्रगट कर सकते थे मेरी अल्पबुद्धि में तो इस लेख से भी जैनियों की असमर्थता और अल्पज्ञता विदित होती है सर्व सज्जनों की सेवा में जैन आधुनिक मत की आधुनिकता प्रगट करता हूं आज-तक आर्यवर्त्त देश में प्राचीन समय से सर्व ऋषि मुनि और सम्पूर्ण

अतीत विद्वान् चार वेद उपवेद और ६ शास्त्रोंकी प्राचीनता ही (अन्य देशों तक भी यानी लन्दन और जर्मनादि) विदित करते हैं और जैनी महाशय इन सत् शास्त्रों को मानते नहीं जब प्राचीन और अनुकूल बातों ही को नहीं ग्रहण करते फिर आधुनिकता तो इन की सर्व पर विदित हो गयी इन के ग्रन्थों का किसी सत्शास्त्र में नाम तक नहीं और इन के प्रामाणिक ग्रन्थों में पुराणादिक तक के नाम और कथा लिखी हैं जब पुराण वाले भी वेद को सनातन अनादि मानते हैं फिर तो जैन मत बहुत ही नवीन और आधुनिक सिद्ध हो गया अब हम जैनियों की अविद्वता सिद्ध करते हैं यदि ये प्राचीन और विद्वान् होते तो पाणिनिऋषिकृत व्याकरण और गौतमऋषिकृत न्याय कदापि नहीं मानते जो कुछ ग्रन्थ इन के आचार्यों ने बनाये हैं इधर उधर की बातें लेकर और मनमानी बुद्धि लड़ा कर ऐसी कपोल कल्पित असत् गाथा लिख मारीं कि जिस से यह सूझा कि यह जाल शीघ्र कट जाय गा इस से अपने शिष्य और मतावलम्बियों को यही शिक्षा की कि अन्य मत वालों को अपने ग्रन्थ न सुनाना न दिखाना यह आधुनिक और असङ्गत कथाओं का कारण क्या नहीं सिद्ध होता है जब इन के ग्रन्थों में अन्य मतवालों के साथ न बात चीत करना और न इन का कुछ सहाय करना और न जीवरक्षा की वस्तुयें बनाना इत्यादि निषेध लिखा है जैसा कुंआ बाग तालाव आदि फिर ये पूर्ण जीव रक्षक कैसे सिद्ध हो सकते हैं हां यह हम कह सकते हैं कि और आधुनिक मतों से इन में जीवरक्षा कुछ विशेष है कहां तक इन की असङ्गत बातें और आधुनिकता लिखें इन की असत् गाथाओं का तो वारापार नहीं इस से सज्जनों के विलोकनार्थ कुछ विदित करके लेखनी को विश्राम देता हूं और सज्जनों की सेवा में प्रतिज्ञा कर के कहता हूं कि इन का सम्पूर्ण लेख जो शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद में छपा है अनेक पक्षपात और मिथ्याभाषण की व्याधियों से ग्रस्त है इस को कोई सज्जन माननीय नहीं कह सकता है ॥

इति सर्व सज्जनों का कृपाभिलाषी

गङ्गारामवर्म्मा मन्त्री आर्य्यसमाज

फ़ीरोज़ाबाद